151

काजरी
शोध के सोपान

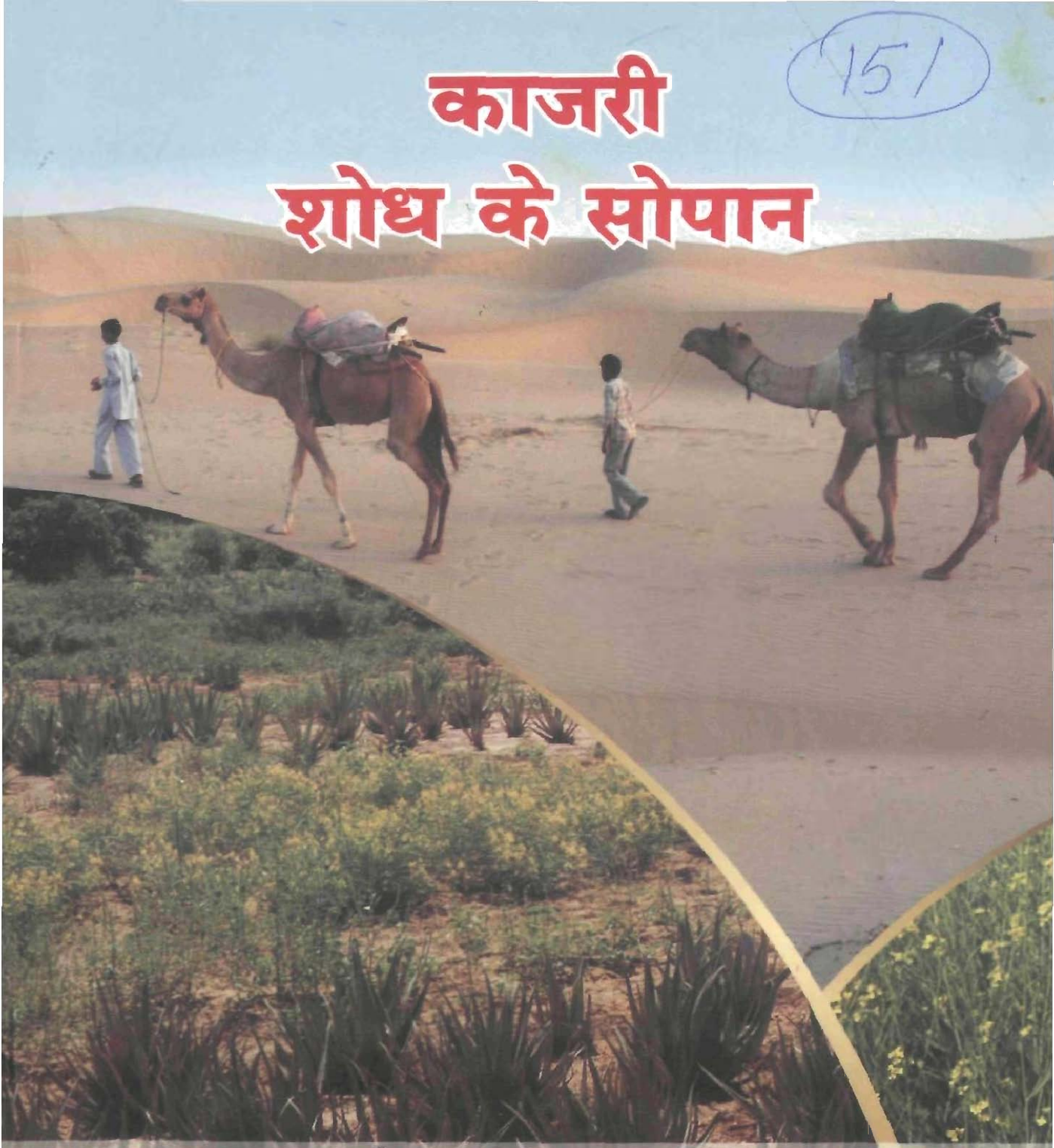

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर

प्रकाशक

निदेशक काजरी

संपादक

डॉ. एम.एम. रॉय

श्रीमती मधुबाला चारण

डॉ. आर.के. कौल

डॉ. आर.एस. त्रिपाठी

डी.टी.पी. : श्री सतोष कुमार मरवण

कवर डिजाइनिग : श्री हरीश पुरोहित

फोटोग्राफी : श्री विजेन्द्र कुमार, श्री देवाराम

मरुस्थल का कायाकल्प
काजरी का है संकल्प

प्रकाशन वर्ष सितम्बर, 2011

मुद्रक एवरग्रीन प्रिंटर्स, जोधपुर

भाकृअनुप
ICAR

काजरी
शोध के सोपान

संपादक

डॉ. एम.एम. रॉय

श्रीमती मधुबाला चारण

डॉ. आर.के. कौल

डॉ. आर.एस. त्रिपाठी

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर

प्रस्तावना

मरूस्थल की विशेष समस्याएँ एवं विशेषताएँ रही है, इसी कारण यह वर्षों से अध्ययनकर्ताओं के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु रहा है।

विभिन्न चुनौतियो और बाधाओं यथा बढ़ती जनसंख्या, उसी के साथ बढ़ती खाद्यान्न मॉग, चारा एव पशु खाद्य की मॉग, प्राकृतिक ससाधनो का अवह्यसन, जलवायु परिवर्तन, कृषि आय की धीमी बढ़ोत्तरी और विश्व व्यापार के नये नियमों के अनुसरण मे कृषि शोध कार्यक्रमो के निर्माण एवं लागू करने में आमूल चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इन्ही को मद्देनजर रखकर हमें आगे का पथ तय करना है। विकट प्राकृतिक परिस्थितियो के कारण राजस्थान में खेती एक जुए से कम नहीं है। "काजरी" द्वारा पिछले पॉच दशको में विकसित तकनीकों ने मरू पारिस्थितिकी के सुधार एवं मरू वासियो के जीवनयापन व जीविकोपार्जन के साधन विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन्ही तकनीको के कारण आज बजर पारिस्थितिकी के होते हुए भी राजस्थान ने दलहनी फसल उत्पादन मे देश मे प्रथम स्थान प्राप्त किया है।

यह स्पष्ट है कि भू–गर्भीय जल के कम होने एवं ग्लोबल वार्मिंग से कृषि और तत्सम्बंधी कार्यो मे अनेक समस्याएँ आई है। प्रति व्यक्ति संसाधनो की उपलब्धता दिनों–दिन कम होती जा रही है व मॉग में बढोत्तरी। सीमित भूमि एवं पानी के ससाधनो एव जलवायुगत विषमताओं के साथ किस प्रकार अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त किया जाय यह हमारे वैज्ञानिकों के समक्ष एक चुनौती है। प्रथम आवश्यकता अनियोजित ससाधन विदोहन को नियोजित करना है। पारिस्थितिक विसंगतियां यह इंगित करती है कि संसाधनो के विदोहन में अत्यन्त जागरूकता की आवश्यकता है।

प्राकृतिक परिस्थितियों के साथ–साथ उन्नत तकनीको के विकास एवं उनको हस्तान्तरित करते समय यहॉ की पारम्परिक क्रियाओं को भी ध्यान में रखना होगा। आर्थिक रूप से पिछडे, विकट परिस्थितियो मे प्रकृति के जोखिम को झेलकर खेती करने वाले किसान समय परीक्षित तकनीकों को ही अपना सकते है अन्यथा वे नई चुनौती नहीं उठा सकते। इसका हम सभी कृषि वैज्ञानिको को ध्यान रखना होगा।

"काजरी" पिछले 50 वर्षों से आवश्यकता एव कीमत आधारित तकनीके, जो इस मरू प्रदेश के किसानो के आर्थिक स्तर को उठाने मे सहायक है तथा जिन्हें वे आसानी से अपना सके, विकसित करने हेतु सघर्षरत है व अनेक तकनीके विकसित व हस्तान्तरित भी की है। "काजरी" द्वारा विकसित तकनीको का लाभ रेगिस्तानी पारिस्थितिकी के परिवर्तन, किसानो के खेतो मे एवं सुधरे जीवन स्तर मे स्पष्टत परिलक्षित होता है। "काजरी" के बेर सुदूर दक्षिण तक विख्यात है। "काजरी" ने टीबा स्थिरीकरण, वायु एवं जल से मिट्टी कटाव का नियंत्रण, सौर एवं कृषि उपकरण, फसल व फलो का उन्नत तकनीकी ज्ञान खेत–खलिहानो व इसके प्रयोक्ता तक पहुँचाया है।

अनुसधान का लाभ किसानो तक पहुँचे व उनके जीवन स्तर में सुधार व खुशहाली आये यही "काजरी" का अतिम लक्ष्य है।

इसी क्रम मे "काजरी" द्वारा हिन्दी भाषा मे "काजरी शोध के सोपान" पुस्तक "काजरी" के शोध को किसानो व जन–जन तक पहुँचाने हेतु प्रकाशित की जा रही है, जो न केवल किसानो अपितु कृषि अनुसधान प्रसार एवं प्रशिक्षण में लगे कार्यकर्त्ताओं हेतु भी उपयोगी होगी।

डॉ. मुरारी मोहन रॉय
निदेशक

विषय सूची-

क्र. स.	विषय वस्तु	पृष्ठ सं.
1.	मरूस्थल – सिंहावलोकन	1
2.	काजरीः एक परिचय	5
3.	काजरीः भविष्य की संकल्पना	13
4.	अनुसंधान उपलब्धियाँ	22
5.	फसल उत्पादन	36
6.	समन्वित नाशी जीव प्रबन्धन	47
7.	वनीकरण	53
8.	चारागाह विकास	57
9.	आर्थिक महत्व के पौधे	63
10.	शुष्क उद्यानिकी	66
11.	पशुधन प्रबन्धन	72
12.	कृषि एवं सौर यंत्रों का विकास	78
13.	उत्पाद–प्रसंस्करण	86
14.	तकनीक हस्तांतरण	90
15.	काजरी की उपलब्ध तकनीकों का औसत लाभःलागत अनुपात और प्राप्ति	95

मरूस्थल – सिंहावलोकन

भारत के भौगोलिक क्षेत्र का 12 प्रतिशत भाग अर्थात करीब 0.32 मिलियन वर्ग कि मी गर्म रेगिस्तानीएव 0.07 मिलियन वर्ग कि मी. ठण्डा रेगिस्तानी क्षेत्र है। राजस्थान में 61 प्रतिशत, गुजरात मे 20 प्रतिशत, पंजाब और हरियाणा मे 9 प्रतिशत, आंध प्रदेश और कर्नाटक मे 10 प्रतिशत गर्म रेगिस्तानी क्षेत्र है एवं ठण्डा रेगिस्तान जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में स्थित है। राजस्थान का 3/5 भाग तप्त मरूप्रदेश मे स्थित है। यह पश्चिमी मरू प्रदेश की सीमा बनाता है। यह बाडमेर, बीकानेर, जैसलमेर, चुरू व श्रीगगानगर, जालोर, झुंझनु, जोधपुर, नागौर, पाली और सीकर जिलों में स्थित है। अकेले राजस्थान राज्य मे भारत के सूखे क्षेत्र का 61 प्रतिशत हिस्सा है इसे थार अथवा विशाल भारतीय मरूस्थल के नाम से भी जाना जाता है। यहॉ की जलवायु विश्व के अन्य मरूस्थलो से भिन्न है। इसके अतिरिक्त लद्दाख (जम्मू कश्मीर) का लगभग 70,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र शीत मरूस्थल के अन्तर्गत है।

सीमित प्राकृतिक ससाधनो युक्त इस उष्ण मरूस्थल की गणना विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या बहुल मरूस्थल के रूप मे की जाती है। शताब्दियों से यहा बसे निवासियो ने प्रकृति से सामंजस्य युक्त ऐसी जीवन पद्धति विकसित की, जिसमें उपलब्ध सीमित संसाधनो के आधार पर जीवन यापन सहज था। किन्तु वर्तमान मे मानव तथा पशुओ की संख्या मे हो रही लगातार वृद्धि के कारण यह क्षेत्र अतिदोहन जनित समस्याओं से ग्रसित है। अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रो में भूमि की उत्पादकता में निरंतर कमी चिन्ता का अतिरिक्त कारण बन गयी है। आधुनिक विकास कार्यो के चलते चारागाह, वन व कृषि क्षेत्र का संकुचन होने से जैव विविधता का ह्रास एवं पर्यावरण असतुलन जैसी गभीर समस्याए उत्पन्न हो रही है। प्राकृतिक ससाधनों के अवैज्ञानिक तथा अधाधुध दोहन को मरूस्थलीकरण का जनक माना जा सकता है।

अध्ययन की दृष्टि से मरू क्षेत्रो की समस्याओ को तीन प्रमुख श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है :

- **भौतिक तथा पर्यावरणीय** : अपर्याप्त एवं अनियमित वर्षा (100–420 मि.मी. प्रति वर्ष), प्राय. घटित अनावृष्टि जनित अकाल, प्रचण्ड सौर ऊष्मा, उच्च ग्रीष्म तापमान (45°–50° से.), शीत ऋतु में पाला पडना, तीव्र वायु वेग (30–40 कि मी /घटा), उच्च वाष्पीकरण दर (1500–2000 मि मी./वर्ष), अनुपजाऊ मृदा, अनुपयुक्त भूमिगत पेय जल, सिचाई के लिए जल का अभाव अथवा अनुपयुक्तता।

- **जैविक** : सीमित पादप उत्पादकता, वन्य जीव तथा नाशीकीटों का प्रकोप, बढती मानव तथा पशु सख्या, सिमटती जैव विविधता।
- **आर्थिक–सामाजिक** : आर्थिक ससाधनो का अभाव, अशिक्षा, घुमक्कड़ जीवन, आधुनिक कृषि तथा पशुपालन तकनीको के उचित उपयोग एवं प्रसार का अभाव।

पश्चिमोत्तर प्रदेशों मे खाद्य उत्पादन का मेरूदण्ड बारानी खेती है। अधिकतर क्षेत्रों में वर्षा आधारित खेती ही की जाती है तथा वर्ष की मुख्य फसल खरीफ ही होती है, यद्यपि कुछ स्थानों पर सचित नमी द्वारा रबी फसल भी ली जाती हैं। ऐसे क्षेत्रो में विस्तृत स्तर पर बुवाई के उपरांत भी प्रति हैक्टेयर उत्पादन सामान्य मापदण्डो से कम ही हो पाता है, जिसके मूल मे वांछित मात्रा मे खाद या उर्वरक तथा कीटनाशक आदि दवाओ का समुचित प्रयोग न होना तथा अधिक उपज वाली किस्मों की उपलब्धता का अभाव हो सकता है।

शुष्क क्षेत्रो में जल तथा भूमि मे लवणीयता अथवा खार पाया जाना सामान्य है। बहुधा भूमिगत जल सिंचाई के लिए अधिक उपयुक्त नही है, तथापि ऐसे जल से लवणीयता सहनीय फसले व्यापक क्षेत्रो मे उत्पादित की जाती हैं। भूमि की लवणीयता अधिकतर ऐसे जल द्वारा सिचाई के कारण ही उत्पन्न हुई है, यद्यपि कतिपय क्षेत्रों में यह प्राकृतिक रूप मे भी विद्यमान है। इस प्रकार से सिंचित फसलो का उत्पादन प्रति इकाई अधिक नहीं होने के उपरात भी इनका प्रदेश की कुल उत्पादकता में महत्वपूर्ण योगदान है। लवणीयता रोधी उपचार अत्यल्प परिमाण मे अपनाये जा सके हैं। भूमि की न्यूनोत्पादकता शक्ति के अतिरिक्त जल तथा वायु द्वारा कटाव भी प्रमुख समस्याए है।

विभिन्न स्थानों पर सीमित मात्रा में कृषि उपयोगी भूमिगत जल की उपलब्धता है, जहॉ उत्पादन उर्वर क्षेत्रो के समतुल्य होता है। जल के ऐसे स्रोतो की जानकारी पिछले एक दो दशक मे हुई है, जिसके कारण बेकार पडी भूमि पर खेती की जाने लगी है। इसके अतिरिक्त कुछ पारपरिक जल स्रोतों यथा तालाब, खडीन तथा नाडी या टांको द्वारा वर्षा जल का संचय कर उसे कृषि हेतु उपयोग मे लिया जाता रहा है किन्तु विकास के साथ ही इन स्रोतो के जलग्रहण क्षेत्रफल मे तीव्र कमी आयी है, जिससे पूर्व की अपेक्षा अति न्यून मात्रा में ही जल सचय हो पाता है। विभिन्न नदियों पर बाध बनने से जहा सीमित क्षेत्र में सिंचाई साधन उपलब्ध करवाने मे सफलता प्राप्त हुई है, वही पूर्व मे इन नदियों के बहाव क्षेत्रो मे अवस्थित कुँओं का जलस्तर गहरा होता जा रहा है तथा जल की गुणवत्ता में भी नकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। अन्य स्थानो पर तो भूमिगत जल का गिरता स्तर अत्यंत शोचनीय है। निरन्तर गिरते जल स्तर के लिए वर्षा की कमी के अतिरिक्त भूमिगत जल का अतिदोहन भी समान रूप से उत्तरदायी है। इदिरा गाधी नहर के आगमन से इस क्षेत्र के कृषि परिदृश्य मे विशाल परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। हिमालय के जल से जहां विपुल कृषि उत्पादन की सभावना बलवती

हुई है, वही नवीन समस्याओ का भी प्रादुर्भाव हुआ है। अनियंत्रित सिंचाई से जल प्लावन तथा जल रिसाव के कारण एक ओर तो बहुमूल्य जल का दुरूपयोग होता है, वहीं दूसरी ओर प्रभावित क्षेत्रों में गहरे पैठे क्षार पुनः सतह पर आ कर भूमि की उर्वरकता को क्षीण कर रहे है। वानस्पतिक तथा प्राणि सरचना मे परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे है। वर्षा बहुल अथवा सिचित क्षेत्रों मे पाये जाने वाले कीट, व्याधियॉ, कृन्तक आदि यहां दस्तक देने लगे है।

मरू वासियों का प्राचीनतम व्यवसाय पशुपालन रहा है। आज भी यह जीविका तथा अर्थोपार्जन का मुख्य आधार है। यह क्षेत्र श्रेष्ठ पशुधन का उद्‌गम स्थल रहा है। परन्तु विदेशी नस्लों की उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता से प्रेरित हो स्थानीय दुर्लभ नस्लो का वृहद् स्तरीय संकरीकरण कर दिया गया है। आने वाले समय में इनके दुष्परिणाम सामने आने की आशंका है। आधुनिक कृषि मे यत्रीकरण की प्रवृति के कारण पशुशक्ति का महत्व कम हो गया है, किन्तु देशी खाद की निरन्तर बढती मांग के चलते इनकी प्रासगिकता बनी रहेगी। इस क्षेत्र की भेड व बकरियो की स्थानीय नस्ले देश मे सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

जनसंख्या तथा सिंचाई के साधनो की उपलब्धता में वृद्धि के साथ ही गोचर तथा चारागाह भूमि का कृषि के लिए उपयोग उतरोत्तर बढ रहा है। जिससे चारागाह सकुचित होते होते विलुप्ति की ओर अग्रसर है। नित्य बढती पशु सख्या का दबाव, जिनमे अनुत्पादक पशु भी सम्मिलित हैं, उपलब्ध चारागाह स्थलो का क्षमता से अधिक दोहन इन्हे अनुर्वरकता की ओर धकेल रहा है।

पशु उपयोगी घासो की सर्वोत्तम प्रजातियो की उद्‌गम स्थली थार में प्राकृतिक चारागाह सिमटते जा रहे हैं। नये चारागाह विकसित करने हेतु भारी धनराशि की आवश्यकता तथा आरभिक वर्षो मे सुरक्षा के सुप्रबंध के अभाव मे इस ओर सामुदायिक अथवा व्यक्तिगत स्तर पर कोई प्रगति नहीं हो पायी है। राज्य संरक्षित क्षेत्रो के विकास में जन भागीदारी का अभाव है। पडती भूमि पर राज्य अथवा केन्द्र सरकार, स्वैच्छिक सगठनो तथा जन साधारण की सहभागिता से चारागाह विकास की अच्छी संभावना है। मरू–वानिकी के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। टीबा स्थिरीकरण कार्यक्रम के अच्छे परिणाम सामने आये है। व्यक्तिगत उपयोग, व्यापार, उद्योग तथा विकास कार्यो के लिए ईंधन हेतु वृक्ष व झाडी आदि काटना बहुतायत में प्रचलित है। शुष्क वातावरण में शीघ्र वृद्धि की क्षमता युक्त वृक्ष प्रजातियो पर यद्यपि शोध कार्य प्रगति पर है, तथापि इस कार्य को गति देने की आवश्यकता है। सामाजिक वानिकी जैसे सर्वजनहिताय कार्यक्रम अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है।

मरू उद्यानिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण शुष्क क्षेत्रो में फल उत्पादन के प्रति रूचि जाग्रत हुई है। असिचित क्षेत्रो में बेर सर्वाधिक लोकप्रिय फल के रूप में उभरा है। "काजरी" द्वारा विकसित पौधशाला तकनीकी तथा फलोत्पादन विधियो को

किसानो का समर्थन मिला है तथा ये व्यापक स्तर पर ग्रहण की गयी है। नहरी क्षेत्रों में फल उत्पादन गतिविधियां अधिक प्रचलित हैं, किन्तु वर्षा आधारित क्षेत्रो मे इनका विस्तार अपेक्षाकृत धीमा है। शुष्क जलवायु के उपयुक्त अन्य वैकल्पिक फलों के बारे मे अनुसधान की महती आवश्यकता है।

भारत के शुष्क तथा अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रो मे प्रचुर जैव विविधता विद्यमान है, जिनमे दुर्लभ जडी बूटिया तथा अन्य बहुउपयोगी वनस्पति सम्मिलित हैं। ये अपने मे शुष्क परिस्थितियों में जीवन यापन तथा वृद्धि की आनुवांशिक विशेषताएं संजोये हैं, जिनका उपयोग श्रेष्ठ वानस्पतिक विकास हेतु किया जा सकता है।

शुष्क क्षेत्रो मे निर्बाध सौर ऊर्जा की वर्षपर्यन्त उपलब्धता का बड़े पैमाने पर दोहन करना अभी तक आरभ नही हुआ है। उच्च आरंभिक लागत वाली वर्तमान तकनीकी मे सुधार कर इसे जन साधारण की क्रय शक्ति के दायरे में लाना वैज्ञानिको के लिए चुनौती है। सर्वत्र उपलब्ध पवन ऊर्जा के सदुपयोग की ओर भी पर्याप्त ध्यान देना होगा। गैर पारपरिक ऊर्जा के स्रोतो की खोज के कार्य को गति देकर पारंपरिक ऊर्जा के संरक्षण का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

यद्यपि पिछले कुछ दशको मे कृषि वैज्ञानिकों द्वारा शुष्क कृषि के क्षेत्र में बहुत उपयोगी जानकारी तथा तकनीकी का उपलब्ध करवाई गई है, परंतु इनका लाभ सर्व साधारण तक पहुचाने का कार्य अपेक्षाकृत शिथिल गति से हुआ है। इसमें कृषक समुदाय की उदासीनता भी आशिक रूप से उत्तरदायी है। किसान समुदाय को कार्यक्रमो से जोडने तथा उनकी आवश्यकताएँ व प्राथमिकताएं वैज्ञानिकों के सम्मुख रखने से ही ऐसी तकनीकी का विकास संभव है, जो उन्हें ग्राह्य हो तथा जिसकी उपादेयता सर्वश्रेष्ठ हो।

काजरीः एक परिचय

स्थापना

पचास के दशक में भारतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक अकादमी द्वारा राजपूताना रेगिस्तान पर एक राष्ट्रीय सगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस संगोष्ठी में रेगिस्तान की निरन्तर अवह्यसित होती स्थिति पर विचार विमर्श के पश्चात् स्थिति में सुधार हेतु अकादमी ने संगोष्ठी की विभिन्न अनुशषाये एव प्रस्ताव भारत सरकार को प्रस्तुत की। इन प्रस्तावो के अध्ययन हेतु सरकार ने एक समिति का गठन किया, जिसने वन अनुसधान संस्थान, देहरादून के प्रशासकीय नियत्रण में जोधपुर, राजस्थान में एक 'वनीकरण अनुसधान केन्द्र' स्थापित करने हेतु अपनी सस्तुति सरकार को प्रस्तुत की। इसी सस्तुति के अनुकरण मे वनीकरण से सम्बंधित सन्दर्भो, रेत के टीबों के स्थिरीकरण, छायादार पौधरोपण एव कृषि व पशुपालन सम्बधित अनुसधान करने हेतु 1952 मे 'मरू वनीकरण केन्द्र' के रूप मे इस संस्थान की स्थापना हुई। 1954 में अंतर्राष्ट्रीय खाद्य सगठन ने वानिकी विशेषज्ञ डॉ. ए.वाई गूर को इस केन्द्र के प्रसार हेतु अध्ययन करने के लिए नियुक्त किया। 'मरू वनीकरण केन्द्र' के प्रक्षेत्र और उद्देश्य को व्यापक बनाने हेतु डॉ गूर की सलाह पर इस केन्द्र का पुर्नगठन 1957 में "मरू वनीकरण एवं मृदा संरक्षण केन्द्र" के रूप मे किया गया, जिसका प्रमुख उद्देश्य मरू क्षेत्रों में वानिकी, क्षेत्रिकी और भू–प्रयोग पर आधारित अनुसंधान करना था। 1958 मे सी.एस.आई.आर.ओ., ऑस्ट्रेलिया के श्री सी एस क्रिश्चियन (यूनेस्को के सलाहकार) द्वारा मरू वनीकरण और मृदा सरक्षण केन्द्र के कार्यो को पुर्नविचारित किया गया। भारत के मरू एवं अर्द्ध मरू क्षेत्रो की समस्याओ पर पूर्ण अनुसधान करने हेतु श्री क्रिश्चियन की प्रस्तावना पर मरू वनीकरण और मृदा सरक्षण केन्द्र को पुर्नगठित कर पूर्ण संस्थान (केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान) का रूप दिया गया। इस प्रकार इसकी एक पूर्ण संस्थान के रूप मे स्थापना 1959 मे हुई। जिसका सक्षिप्त रूप "काजरी" बहुत लोकप्रिय हुआ। "काजरी" का प्रशासनिक नियंत्रण अप्रैल 1966 मे भारत सरकार के कृषि मत्रालय से स्थानान्तरित कर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् को सौंप दिया गया।

समस्याएँ

तप्त मरू प्रदेश में विशाल जनसख्या की सामान्य समस्या अनिवार्यतः एक मानव जनित पारिस्थितिकी है। राजस्थान राज्य में औसत वार्षिक वर्षा 58 से मी है, जो तप्त पश्चिमी राजस्थान मे 10 से.मी से लेकर पूर्व–दक्षिण क्षेत्र मे 100 से मी. तक विभिन्नता से होती है। 90 प्रतिशत वर्षा मानसून समय जुलाई से सितम्बर मे होती है। राजस्थान का 50 प्रतिशत भाग खेती के अन्तर्गत है। राज्य में मानव जनसंख्या की उच्च वृद्धि दर 2 8 वार्षिक और पशु सख्या 48 लाख है।

विकट प्राकृतिक परिस्थितयो में कम और अनियमित वर्षा, निरन्तर सूखा, प्रचंड विकिरण, पाला पडना, तेज वायु गति, उच्च वाष्पान्तरण तथा उच्च तापमान खराब मृदा स्थितियॉ, मनुष्य व जानवरो तथा सिंचाई हेतु सीमित मात्रा मे उपलब्ध जल आदि लगातार इस क्षेत्र की उत्पादकता को घटाते रहे है। इसके अतिरिक्त सीमात और अर्द्ध सीमात भूमि पर मानव और पशु सख्या का दबाव, नाशीकीटो, व्याधियो, कृन्तकों आदि के कारण कम पौध उत्पादकता से मरूस्थलीकरण प्रक्रिया को निरतर बल मिला है। प्राकृतिक संसाधनों, पर्यावरण के सरक्षण और विकसित आधुनिक कृषि तकनीकों को अपनाने हेतु अपर्याप्त जानकारी, कृषि के अलावा अन्य व्यवसाय की कमी, विखंडित स्वामित्व मे भूमि, घुम्मकड जीवन आदि सभी कारण एक साथ यहॉ के जन जीवन में परिवर्तन लाते हैं। ये तत्व इस क्षेत्र को अधिक रूक्ष और कम उत्पादक पर्यावरण के निर्माण की ओर अग्रसर करते है। वायु और जल कटाव से ऊपर की अच्छी मृदा को नुकसान और असुरक्षित ग्रामीण आर्थिकी अन्य प्रमुख कारक है जो यहॉ के पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। थार रेगिस्तान की बजर पारिस्थितिकी की अपनी अलग समस्याएँ हैं। किसी क्षेत्र के विकास की वैज्ञानिक प्रकार से विकसित योजनाएँ बनाने हेतु उस क्षेत्र के संसाधनो का सघन अध्ययन एवं उससे सबन्धित तथ्यात्मक ऑकडे व सूचनाएँ एकत्रित करना प्रथम आवश्यकता माना जाता है। इस क्षेत्र के सघन अनुसंधानात्मक अध्ययन करने एवं स्थानीय समस्याओं के अध्ययन एव तकनीके विकसित करने हेतु सरकार द्वारा शुरूआत कोलोम्बो योजना के अतर्गत की गई।

प्रमुख उद्देश्य

पिछले पॉच दशक की यात्रा में संस्थान मरूस्थलीय क्षेत्र की उत्पादकता को बढाने के लिए आवश्यक और उचित प्रभावकारी जानकारी विकसित करने हेतु प्रयासरत है। संस्थान के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं।

- शुष्क क्षेत्र के प्राकृतिक ससाधनो का सर्वेक्षण एवं विकास।
- उपलब्ध जल संसाधनो का अध्ययन एवं उनका सुचारू उपयोग; वर्षा, सतही और भू–जल का अध्ययन और उसके सग्रहण के उचित उपाय।
- मृदा, जल, वनस्पति का संरक्षण व प्रभावकारी उपयोग।
- विभिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों में लगने वाले उपयोगी वृक्षों, झाडियों व अन्य वनस्पति प्रजातियो का परिचय, सरक्षण, अध्ययन और विकास एव जैव विविधता सरक्षण।
- फसल, चारे, घास, फलों आदि की उन्नत किस्मो का विकास एव उनके बुवाई, कटाई सग्रहण, उर्वरक, कीटाणु–व्याधि नियत्रण आदि की उन्नत तकनीको का विकास तथा फल, फसल व दूध के प्रसस्कृत उत्पादो का विकास।

- पशुओ की उन्नत नस्लो का विकास, उनके प्रबंध और रखरखाव की उन्नत विधियो का विकास। शुष्क क्षेत्रों हेतु उपयुक्त पशु आवास का विकास।
- कृषको हेतु सुविधाजनक, सस्ते और स्तरीय कृषि यत्रो का विकास।
- ऊर्जा के अपारपरिक स्रोतो और पवन ऊर्जा के प्रभावकारी उपयोग की तकनीक का विकास ।
- विकासीय गतिविधियों हेतु क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक सर्वेक्षण द्वारा ऑकडे उपलब्ध करवाना।
- उन्नत तकनीकों को प्रयोगशाला से किसानों के खेतों मे पहुँचाना, किसानों को प्रसार साहित्य, किसान मेलो, सगोष्ठियो आदि द्वारा उनकी जानकारी देना।

सस्थान द्वारा 51 वर्षो से किये जा रहे निरतर प्रयासो के परिणामस्वरूप ही आज "काजरी" मरू क्षेत्रो पर अध्ययन करने वाला एक ख्याति प्राप्त अतर्राष्ट्रीय सस्थान माना जाता है। यह एक बहु–विषयी अनुसंधान संस्थान है, जहाँ 30 से भी अधिक विभिन्न विषयो पर अनुसधानात्मक सुविधाएँ उपलब्ध है।

अनुसंधान संगठन एवं सुविधाएँ

अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संस्थान अच्छी तरह से संगठित है। संस्थान का मुख्यालय, जोधपुर में 241 हैक्टेयर क्षेत्रफल में स्थित है।

सस्थान के चार क्षेत्रीय अनुसधान केन्द्र बीकानेर (192 है.), जैसलमेर (133 है), पाली (455 है) राजस्थान मे तथा भुज (58 है.) गुजरात मे स्थापित हैं। ये विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रो मे स्थित है। इस प्रकार चार क्षेत्रीय प्रबध और मृदा संरक्षण क्षेत्र; चादन (95 है.), बीचवाल (71 है), भोपालगढ (51 है) और जाड़ण (77 है) और दो वनीकरण क्षेत्र कायलाना और बेरीगगा क्षेत्र भी संस्थान के अंतर्गत कार्यरत है। तीन कृषि विज्ञान केन्द्र भी सस्थान के अतर्गत जोधपुर, पाली (राजस्थान) और भुज (गुजरात) मे कार्यरत है।

हिमालाय के ठण्डे शुष्क क्षेत्र मे प्रमुख बाधाएँ कम वर्षा (<150 मि.मी.) तापमान की अत्यधिक विभिन्नता, सीधे और ढलान वाले क्षेत्र, निम्न मृदा स्थितियाँ, संकुचित घाटी क्षेत्र आदि है जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र मे फसल उत्पादन एवं पशु बुरी तरह प्रभावित होते है। इन्ही समस्याओं पर शोध करने हेतु "काजरी" का एक अनुसंधान केन्द्र जल्द ही जम्मू और कश्मीर मे लेह मे खुलने जा रहा है ताकि हिमाचल प्रदेश व जम्मू कश्मीर के ठडे रेगिस्तान की समस्याओ पर शोध कार्य किया जा सके व उचित प्रबंधन द्वारा वहाँ के निवासियो की आजीविका स्तर को बढ़ाया जा सके।

राजस्थान में "काजरी" ने अपने 52 अनुसंधान क्षेत्रो में चारागाह विकसित व अध्यनित किये। उनमें से 5 को छोडकर अन्य राजस्थान सरकार को सौंप दिये।

"काजरी" मे कृन्तक नियंत्रण और मरू दलहन पर समन्वित अनुसंधान हेतु दो अखिल भारतीय नेटवर्क परियोजनाओ का मुख्यालय भी है। जहॉ से अखिल भारतीय स्तर पर इस विषयो पर होने वाले अनुसंधान का संपूर्ण समन्वयन एव प्रबोधन किया जाता है।

संस्थान मे कृषि अनुसधान सूचना पद्धति (एरिस) कार्यरत है जहॉ आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकीय सुविधाएँ, ई–मेल, इटरनेट आदि उपलब्ध है।

सस्थान मे अनुसधान हेतु पॉच भवन, प्रशासनिक भवन, सौर ऊर्जा यार्ड, फार्म ऑफिस और अनेक छोटे–बड़े एकक है। सभी प्रयोगशालाएँ आधुनिक उपकरणों से पूर्ण सज्जित है जो न केवल "काजरी" के वैज्ञानिक अपितु देश–विदेश से आए अनुसंधानकताओं, शोध छात्रो आदि के भी प्रयोग मे आती है।

अतिथिगृह एवं छात्रावास

बाहर से आए अनुसंधानकर्ताओ व प्रशिक्षुओं की सुविधा हेतु संस्थान मे एक अतिथिगृह तथा छात्रावास भी है। अतिथि गृह मे 12 कमरे व छात्रावास मे 30 कमरे है। कृषि विज्ञान केन्द्र मे एक किसान छात्रावास भी है जहॉ प्रशिक्षण हेतु किसानो के ठहरने की उचित व्यवस्था है।

सस्थान के पास आधुनिक दृश्य–श्रव्य उपकरण, क्षेत्र की समस्याओं तथा सस्थान द्वारा विकसित तकनीको को दर्शाने वाले चार्ट, मॉडल, छायाचित्रों से सुसज्जित संग्रहालय भी है। सीधे सवाद हेतु "काजरी" मुख्य भवन मे वीडियो कॉफ्रेन्सिग सुविधा भी उपलब्ध है। आधुनिक सुविधा युक्त प्रेक्षालय, सभा कक्ष एवं कर्मचारियो के रहने हेतु जोधपुर "काजरी" कॉलोनी में 132 रहवासीय क्वाटर एवं पाली में 21 तथा बीकानेर मे 10 है। जैसलमेर एवं भुज मे चार–चार आवासीय भवन हाल मे बनाये गये है।

पुस्तकालय

1952 में 400 पुस्तकों से प्रारम्भ किया गया सस्थान का डॉ. रहेजा पुस्तकालय (काजरी के प्रथम निदेशक डॉ. पी सी. रहेजा के नाम पर) आज नवीनतम सुविधाओं युक्त समृद्ध पुस्तकालयो की श्रेणी मे आता है। यह न केवल स्थानीय अनुसंधानकर्त्ताओ, अपितु बाहर के वैज्ञानिको, उच्चतर अध्ययन कर रहे छात्रो तथा कृषि अनुसधान तथा विकास में लगे अन्य विभागों के कार्यकर्ताओं हेतु भी एक बहुत उपयोगी सूचना का स्रोत है। इसमे 18,000 पुस्तकें संग्रहित है तथा 105 कालिक प्रकाशन और 210 पत्रिकाएँ नियमित रूप से आती हैं।

इस पुस्तकालय की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि यहाँ वन एवं पर्यावरण मत्रालय (भारत सरकार) द्वारा आठवीं पचवर्षीय योजना मे मरूस्थल (डेजर्टिफिकेशन) पर पर्यावरण सूचना पद्धति केन्द्र की स्थापना की गई है। यह सूचना केन्द्र अपनी स्थापना से ही निरन्तर मरूस्थल और मरूस्थल की रोकथाम के उपायो की सूचनाएँ विश्व भर में

त्वरित गति से पहुँचा रहा है। इसके लिए यह केन्द्र सम्बधित सूचनाएँ एकत्रित व सग्रहित करके पाठकों/उपयोगकर्त्ताओ को कम्प्यूटर, ई–मेल की सहायता से पहुँचाने मे सक्षम है।

शोध समन्वय, प्रशासन एवं प्रबंधन

सस्थान के प्रमुख निदेशक है, जो अनुसधान, प्रसार, प्रशिक्षण और प्रशासन की गतिविधियों के प्रभारी है। निदेशक की सहायता हेतु शोध समन्वय एव प्रबन्धन अनुभाग है, जो अनुसंधान से सम्बंधित गतिविधियो के समन्वयन का कार्य करता है। सस्थान से सम्बंधित निर्णयों हेतु सर्वोच्च प्राधिकृत संस्थान प्रबन्ध समिति है, जिसके अध्यक्ष निदेशक है।

अनुसधान कार्यक्रम पहले वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किये जाते हैं। तत्पश्चात् इस पर संस्थान अनुसधान परिषद् मे विस्तृत विचार किया जाता है। सस्थान के समस्त वैज्ञानिक इसके सदस्य तथा निदेशक अध्यक्ष होते है। वैज्ञानिको द्वारा प्रस्तुत परियोजनाएँ विस्तृत विवेचना के पश्चात् गुणावगुण के आधार पर स्वीकृत की जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा मनोनीत उच्च स्तरीय वैज्ञानिक अधिकारी इसमें उचित मार्गदर्शन हेतु उपस्थित रहते हैं।

संस्थान के अनुसंधान कार्यक्रमों की संवीक्षा एवं आगामी शोध हेतु उचित सुझाव हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा एक अनुसंधान सलाहकार समिति गठित की जाती है, जो समय–समय पर अनुसंधान कार्यक्रमों की पुनरीक्षा करती है।

निदेशक

- श्री जी एस लांबा (1952 से 1957)
  (मुख्याधिकारी, रेगिस्तान वनीकरण केन्द्र)
- श्री सी पी. भीम्मया (1957 से 1960)
  (प्रमुख, रेगिस्तान वनीकरण केन्द्र)
- डॉ. पी.सी. रहेजा, निदेशक (1960 से 1967)
- डॉ. मुख्तार सिंह, निदेशक (1968 से 1969)
- डॉ. टी.आर. मेहता, निदेशक (1969 से 1970)
- डॉ. एच.एस. मान, निदेशक (1971 से 1982)
- डॉ के. शंकरनारायण, निदेशक (1983 से 1987)
- डॉ जे. वेंकटेश्वर्लू, निदेशक (1988 से 1994)
- डॉ. अमरसिंह फरोदा, निदेशक (1995 से 1999)
- डॉ प्रताप नारायण, निदेशक (2000 से 2006)

- डॉ के पी आर विट्ठल, निदेशक (2007 से 2009)
- डॉ. एम एम रॉय, निदेशक (2010 से अद्यतन)

बीच–बीच में समय–समय पर कार्यकारी निदेशक रहे हैं।

गतिविधियाँ

संस्थान में मरू क्षेत्रों से सम्बधित प्रत्येक ग्राह्य क्षेत्र पर आधारभूत एवं लागू होने योग्य अनुसंधान किये जाते है। इन गतिविधियो मे सम्मिलित है –

- आधारभूत संसाधन सर्वेक्षण
- रेगिस्तानीकरण प्रबोधन
- अवह्यसित भूमि का पुनरूद्धार और प्रबधन
- वनीकरण और वायु कटाव नियंत्रण
- शुष्क भूमि कृषि और एकीकृत जल ग्रहण प्रबंध
- वैकल्पिक भू–प्रयोग पद्धति
- सीमित मात्रा में सिचाई हेतु उपलब्ध जल का समुचित उपयोग
- क्षारीय भूमि प्रबध और मृदा सरक्षण
- एकीकृत जल सग्रहण प्रबध
- फसलो, घास, झाडियो और पेडों की किस्मो का सुधार
- पशु उत्पादन और प्रबध
- कम प्रयुक्त और कम विदोहित पौधो से प्राकृतिक उत्पादन
- कृषि उत्पादन की संधारन प्रक्रिया
- एकीकृत नाशीजीव प्रबधन
- अपारम्परिक ऊर्जा प्रयोग और कृषि यांत्रिकी
- सामाजिक आर्थिक अनुसधान, मानव संसाधन विकास
- खेतों पर अनुसंधान और तकनीक हस्तातरण।

इस प्रकार "काजरी" की अनुसधान गतिविधियो मे वे सभी मुख्य तथ्य सम्मिलित हैं जो रेगिस्तान के विकास से सम्बधित है। इस क्षेत्र के स्थायी विकास के मार्ग एवं साधन विकसित करना इन सभी गतिविधियो का प्रमुख लक्ष्य है, ताकि इससे आशाजनक उत्पादन और गुणवत्ता प्राप्ति के साथ ही यहाँ की बंजर एव शुष्क पारिस्थितिकी में समृद्धता मे वृद्धि की जा सके।

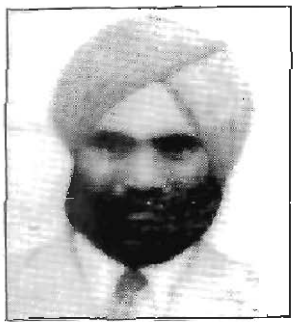

श्री जी.एस. लांबा)
(1952–1957

श्री सी.पी. भीम्मया
(1957–1960)

डॉ. पी.सी. रहेजा
(1960–1967)

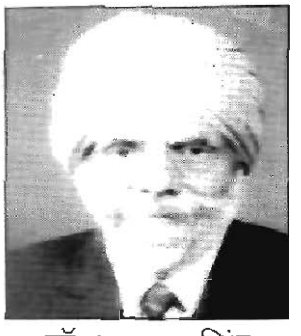

डॉ. मुख्तार सिंह
(1968–1969)

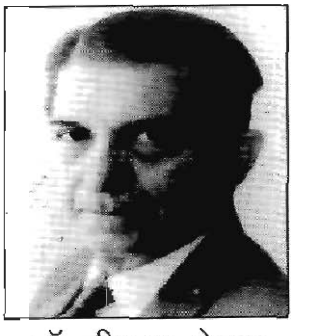

डॉ. टी.आर. मेहता
(1969–1970)

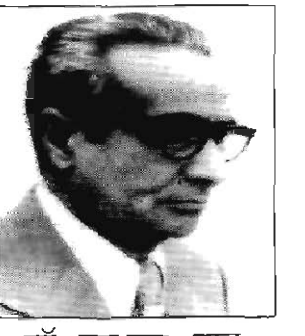

डॉ. एच.एस. मान
(1971–1982)

डॉ. के.ए. शंकरनारायण
(1983–1987)

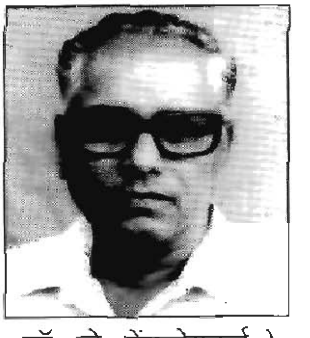

डॉ. जे. वेंकटेश्वर्लू)
(1988–1994

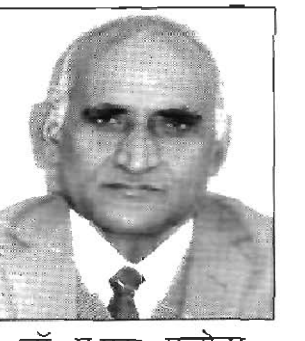

डॉ. ए.एस. फरोदा
(1995–1999)

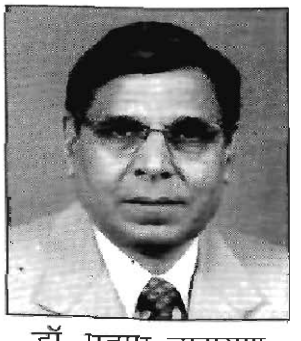

.डॉ. प्रताप नारायण
(2000–2006)

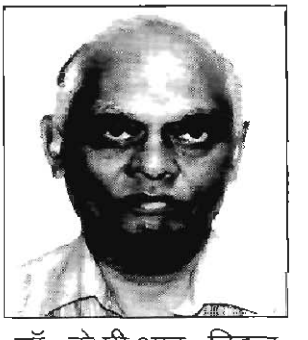

डॉ. के.पी.आर. विट्ठल
(2007–2009)

डॉ. एम.एम. रॉय
(2010–अद्यतन)

काजरीः भविष्य की संकल्पना

शुष्क उत्पादन परिदृश्य

शुष्क क्षेत्रो की जलवायु व अन्य अवरोधो के कारण यह कृषीयत सबसे कम विकसित क्षेत्र है। विभिन्न प्रयासो के बावजूद राजस्थान के शुष्क क्षेत्रो की उत्पादकता गगानगर जिले के अलावा बहुत कम (<रू 18199/है) है। अन्य बहुत कम उत्पादकता वाले जिलो मे गुजरात का कच्छ, आन्ध्रप्रदेश का अनन्तपुर, कर्नाटक का रायचुर और कोपाल तथा जम्मू–कश्मीर का लेह और कारगिल आदि सम्मलित है। देश मे बाडमेर, जैसलमेर और चुरू तीन सर्वाधिक कम उत्पादकता वाले जिले है (<रू 5000/है)। ठडे रेगिस्तान में कारगिल (<रू 8473/है) और लेह (<रू 15367/है) है जहॉ कम बुवाई क्षेत्र होने के उपरान्त भी अधिक उत्पादकता मूल्य शायद अधिक मूल्य वाली फसलो के कारण रहा है।

वर्षा फसल उत्पादन मे प्रमुख बाधक तत्व है। अध्ययन के अनुसार 1 प्रतिशत वर्षा मे वृद्धि से औसत 0.43 प्रतिशत कृषि उत्पादकता मे वृद्धि होती है। यद्यपि इसमें अन्य भी सम्मिलित है। इससे स्पष्ट है कि शुष्क प्रदेशो मे विशेषकर पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्रो मे सतत् कृषि विकास हेतु अभी शोध पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

राजस्थान का वर्तमान कृषीय परिदृश्य

यह सत्य है कि शुष्क राजस्थान मे सकल कृषीय उत्पादन कम है, परन्तु फिर भी पिछले दशको मे इसमे बहुत सुधार हुआ है। कृषीय आर्थिकी परिवर्तन के द्वार पर है। हरित क्रान्ति के द्वारा उपलब्ध तकनीकी पैकेज एव प्रजातंत्र के पश्चात् आधारभूत सुविधाओ मे विकास के परिणाम स्वरूप सुदूर ग्रामीण क्षेत्रो के निवासियो की आजीविका, जीवन स्तर मे स्पष्टत परिवर्तन आया है। निरन्तर कृषि क्षेत्र मे हुए शोध से प्राप्त तकनीकी ज्ञान और ग्रामीण विकास कार्यक्रमो के द्वारा न केवल बढती पशु व मनुष्यों की सख्या हेतु खाद्यान्न उपलब्ध हुआ अपितु अतिरिक्त खाद्यान्न बाजार मे बेचने हेतु भी उपलब्ध हुआ। विद्युतीकरण एव सडको से गॉवो का जुडना, इदिरा गॉधी नहर परियोजना द्वारा राजस्थान के वृहद टीबा क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा का होना, कृषको को ऋण की सुविधाओं का विस्तार, कृषीय तकनीकों का प्रसार आदि विभिन्न कारकों से कृषीय पारिस्थितिकी मे सुधार हुआ। 1961 और 2011 के जनगणना के बीच जनसख्या मे <250 प्रतिशत की बढोत्तरी हुई जबकि 1956 और 2003 के बीच पशु संख्या मे <75 प्रतिशत वृद्धि हुई।

विस्तृतः शुष्क पश्चिमी राजस्थान में खाद्यान्न की मॉग 4.73 मिलियन टन के मुकाबले अभी 5.13 मिलीयन टन उत्पादन है। खरीफ दलहनो की अनुमानित मॉग 041

मिलियन टन के मुकाबले उत्पादन 1 12 मिलियन टन है। तिलहनो में मॉग 2.05 मिलियन टन के मुकाबले क्षेत्र मे उत्पादन 1.71 मिलियन टन है। जबकि बाजरा, ज्वार और गेहूँ प्रमुख खाद्यान्न, मोठ एव मूंग प्रमुख खरीफ की दलहनी फसल है। मूगफली, तिल, अरण्डी, रायां, सरसों एवं तारामीरा प्रमुख तिलहनी फसले है। अभी क्षेत्र में फलो एवं सब्जियो की मॉग क्रमशः 0 26 तथा 1 40 मिलियन टन है परन्तु वर्तमान उत्पादन अनुमानत <0 1 मिलियन टन है।

पश्चिमी शुष्क राजस्थान दो कृषीय जलवायु क्षेत्रों पश्चिमी शुष्क क्षेत्र, और मैदानी समतल क्षेत्र में विभक्त है और चार कृषि जलवायु जोन (1) पश्चिमी शुष्क मैदान (2) जलोत्सरण का ट्रान्जिशनल मैदान (3) लूनी बेसिन का ट्रान्जिशनल मैदान (4) राजस्थान का उत्तर–पश्चिमी मैदान का सिचित क्षेत्र हैं।

उत्पादन और व्यय का मध्य 2000 का विश्लेषण यह बताता है कि पश्चिमी राजस्थान के चारो कृषि जलवायु जोन मे कुल आय का 26–43 प्रतिशत भाग कृषीय क्षेत्र से आता है। खनन क्षेत्र से 1.6 से 1.8 प्रतिशत जबकि अन्य क्षेत्रों से 56–73 प्रतिशत आय होती है। कृषीय क्षेत्र में फसल से 59–71 प्रतिशत सकल कृषीय आय होती है जबकि पशुधन से 28–42 प्रतिशत होती है।

उपरोक्त परिदृश्य से यह स्पष्ट है कि सुदृढ भविष्य हेतु शुष्क कृषि पद्धति मे फसल–पशुपालन–उद्यानिकी आधारित कृषीय पद्धति की आवश्यकता है। इन उत्पादन पद्धतियो मे जब तक तकनीक आधारित परिवर्तन, सुदृढ नीतिगत समर्थन के साथ नही किया जायेगा तब तक क्षेत्र की कृषीय आर्थिकी में अपेक्षाकृत सुधार की सभावना क्षीण रहेगी।

क्षेत्र की भविष्य की संभावनाएँ

वर्तमान की 28 15 मिलियन जनसख्या (2011 जनगणना) के मुकाबले सन् 2031 में यंह 34 मिलियन हो जायेगी। जिसके कारण खाद्यान्न की वर्तमान मॉग 4.73 मिलियन टन से बढकर 5 68 मिलियन टन; दालो की मॉग 0.41 मिलियन टन से बढकर 0.49 मिलियन टन; तिलहन की 0 21 मिलियन टन से बढ़कर 0.25 मिलियन टन हो जायेगी। अनुमानत जलवायु की सम्बंधित स्थिरता और 10–20 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से नई और आने वाली तकनीक के प्रयोग से 2031 तक खाद्यान्न का उत्पादन सभावितत: 7 34 मिलियन टन, दालो का 1.22 मिलियन टन और तिलहनो का 1.90 मिलियन टन होगा (*स्रोत: काजरी विजन 2030*)। अन्य शब्दो मे मॉग के मुकाबले उत्पादन अधिक होगा। इसी प्रकार 2031 तक पशुधन सख्या वर्तमान 10 2 मिलियन से बढकर 12 6 मिलियन तक होने की सम्भावना है। अनुमानतः सघन बुवाई वाले सिंचित उत्तरी–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रो से फसल अवशेष द्वारा अधिक चारे की प्राप्ति होगी तब चारा मॉग 32 मिलियन टन के मुकाबले, 43 5 मिलियन टन की आपूर्ति होगी (*स्रोतः काजरी विजन 2030*)। उपरोक्त सभावित सकल्पनाएँ ग्लोबल वार्मिंग के सकट से प्रभावित होने वाली है, जैसा

कि हेडले सेन्टर (यू के.) और आई आई.टी एम., पुणे के अध्ययन ने सुझावित किया है कि 21वी सदी मे शुष्क राजस्थान मे वार्षिक तापमान 2–5° से तक बढेगा। गर्मी और सर्दी दोनों के तापमान मे धीरे–धीरे वृद्धि होगी जो मृदा नमी क्षेत्र और फसल वृद्धि तरीके को प्रभावित करेगा। अगले 50 वर्षों में मानसून की वर्षा मे उत्तरी–पश्चिमी राजस्थान में धीरे–धीरे 20–30 प्रतिशत तक कमी होगी तथा शुष्क राजस्थान के पूर्वी क्षेत्रो मे और उससे जुडे हरियाणा में 25 प्रतिशत तक वृद्धि होंगी। सर्दी की वर्षा में धीरे–धीरे 20–40 प्रतिशत तक वृद्धि होगी। दूसरी तरफ शुष्क गुजरात और जुडे दक्षिणी राजस्थान में मानसूनी वर्षा में 25 प्रतिशत वृद्धि इसी प्रकार सर्दी की वर्षा मे भी वृद्धि होने की सम्भावना है।

विभिन्न तापमानो और वर्षा वितरण मॉडल पर बाजरा की फसल पर पश्चिमी राजस्थान मे "काजरी" द्वारा किये गये अध्ययन मे यह प्रकट हुआ कि तापमान मे वृद्धि का वर्षा आधारित फसलो की उपज पर बुरा प्रभाव पडेगा। वर्षा की कमी व मध्यम वर्षा एवं मध्यम बनावट वाली मृदा (पाली) की अपेक्षा हल्की बनावट वाली मृदा (जैसलमेर एव जोधपुर) वाली कम वर्षा वाले क्षेत्रो में (जोधपुर एव पाली में तापमान 4° से. बढने पर) अधिक नकारात्मक प्रभाव होगा। जिससे शुष्क क्षेत्रो के फसलोत्पादन मे वर्तमान की अपेक्षा अधिक कमी सम्भावित है।

उपरोक्त सभी परिदृश्य को परिलक्षित करते हुए शुष्क क्षेत्रो में निम्न विषयो पर अधिक कृषीय शोध की आवश्यकता होगी।

- ससाधनो का त्वरित मूल्यांकन और प्रबोधन
- अधिक तापमान सहने वाली फसलो पर शोध
- वर्षाजनित असामान्यता को ध्यान मे रखकर फसलों व अन्य आर्थिक पौधों की जल प्रभावशालिता उपयोग पर शोध
- शुष्क क्षेत्रो की उत्पादकता बढाने के उपाय
- निरन्तर अकाल और बाढ की त्रासदी का सामना करने हेतु प्रबन्ध प्रक्रिया, वर्षा जल बहाव को सर्दी की फसलो हेतु रोकना व बहाव को सीमित करना
- मृदा पौषक तत्वों का प्रबंधन व वायु कटाव को कम करने हेतु रेतीले मैदानी भाग पर हरियाली बढाना
- जलवायु परिवर्तन से होने वाले नाशी जीवो का प्रकोप कम करने पर शोध
- अनिश्चिताओं का सामना करने हेतु चारागाह भूमि और पशु उत्पादक पद्धति मे सुधार
- फसल विविधीकरण
- पशुधन आधारित कृषीय पद्धति

- कृषि उत्पादो का प्रसंस्करण और उत्पादो हेतु बाजार की उपलब्धता ताकि ग्रामीण लोगो की आय बढे व जीवनयापन सुरक्षित रहे
- घुमन्तू पशुपालको के परिवारो हेतु आने वाली चुनौतियो का अध्ययन
- सौर व पवन ऊर्जा की बहुउपलब्धता को देखते हुए इस पर अधिक शोध।

अन्य जलवायुगत प्रभावो, ऊर्जा, शुष्क कृषि वानिकी तथा जलवायु परिवर्तन द्वारा ग्रामीण आर्थिकी पर पडने वाले प्रभाव का विस्तृत अध्ययन, आदि नई चुनौतियॉ हमारे समक्ष है तथा "काजरी" के वैज्ञानिक नूतन वैज्ञानिक चुनौतियों पर शोध करने व उससे मरूस्थलवासियो की आजीविका व जीवन स्तर सुधारने हेतु व्यवहारिक शोधपरक परिणाम हेतु कृत सकल्प है।

चुनौतीगत कार्यकारी संरचना

लक्ष्य	लक्ष्य हेतु दिशा	निष्पादन मापदण्ड
प्राकृतिक संसाधन	(1) प्राकृतिक ससाधनो (जलवायु भू–आकृति, मृदा वनस्पति, सतही और भू–जल, भू–प्रयोग और भूमि अवैह्रास) की स्थिति का अर्द्ध विस्तृत आधार पर एकीकृत मूल्याकन एव आकलन।	भूमि ससाधन मूल्याकन रिपोर्ट और जिला तहसील स्तर पर ससाधनो का डिजिटल मानचित्रण।
	(2) तकनीकी विकल्प हेतु सकल पौध मृदा कार्बन का आकलन, ताकि पौषक तत्वो की उपलब्धता को सुधारा जाय।	विभिन्न प्रयोग के अन्तर्गत प्रयुक्त तकनीको का अंकीय आधारित अध्ययन।
	(3) क्षेत्रीय भू–उपयोग पद्धति और उसमे हुए बदलाव का अकीय आधारित विश्लेषण।	समयाधारित मुख्य भू–प्रयोग और उसके वर्गीकरण का मानचित्रण।
	(4) उत्पादन पद्धतियो मे मृदा जैवीय प्रक्रियाओ का उनके प्रभावकारी प्रयोग हेतु विश्लेषण।	विभिन्न भू–उपयोग और कृषि जलवायुगत परिस्थितियो मे उन्नत तकनीक उपयोग की स्थिति और उपलब्धता का डाटाबेस बनाना।
रेगिस्तानीकरण प्रबोधन	(1) रेगिस्तानीकरण प्रक्रिया का आकलन और समयाधारित मानचित्रण।	रेगिस्तानीकरण के क्षेत्राधारित एव अवधि आधारित मानचित्रण।
	(2) विभिन्न भू–उपयोग मे मृदा उर्वरता आकलन और प्रबोधन।	विभिन्न भू–उपयोग के अन्तर्गत प्रमुख और सूक्ष्म पौषकतत्वो का क्षेत्रीय डाटाबेस और मानचित्रण।
	(3) मृदा और जल सरक्षण हेतु भू–स्थितियो का विभिन्न क्षेत्रो मे आकलन।	अवसाद, बहाव व बदलाव का विश्लेषण, भू–आधारित अध्ययन।

लक्ष्य	लक्ष्य हेतु दिशा	निष्पादन मापदण्ड
जलवायु परिवर्तन प्रबोधन	(1) जलवायु गत प्रभावो का निरन्तर प्रबोधन	दैनिक मौसम के प्रभावो का काजरी केन्द्र, अन्य सूचना तत्र से प्राप्त सूचनाओ का डाटाबेस विश्लेषण।
	(2) सूखा और बाढ का आकलन और उनके उपयुक्त फसल–पौध निर्धारण।	क्षेत्रीय पेटर्न और उसके कृषि पर प्रभावो का विश्लेषण।
	(3) अल्प और दीर्घ समयावधि के मौसम भविष्यवाणियो पर आधारित कृषि–सलाह।	साप्ताहिक कृषि सलाह का बुलेटिन।
	(4) विपरीत जलवायुगत परिस्थितियो मे आपात कृषिनीति का विकास।	आपात सूखा व अकाल की स्थितियो मे शोध रिपोर्ट जारी करना।
एकीकृत कृषि पद्धति	(1) पशुधन, फसल, औद्यानिकी, औषधीय और चारा की प्रजातियो मे बहुउद्देशीय, उत्पादक, विविधतापूर्ण कृषीय पद्धति का विकास।	विभिन्न कृषि–जलवायु स्थितियो मे विभिन्न भू–स्वामित्व के अन्तर्गत अतिरिक्त भू–उपयोग हेतु पौधो और पशु प्रजातियो का चयन व उचित समन्वय।
मृदा और जल प्रबन्ध	(1) स्वस्थाने मृदा नमी सग्रहण, खडीन और अन्य, जल–उत्पादन पद्धति द्वारा वर्षाजल सग्रहण ।	बहुउद्देशीय जल सरक्षण से आशाजनक उत्पादन पद्धति।
	(2) एकीकृत जलग्रहण प्रबन्धन–आजीविका और भू–जल पुर्नभरण हेतु।	ससाधनो के सरक्षण द्वारा आजीविका मे सुधार।
अवह्यसित भूमि प्रबन्धन	(1) सामुदायिक भू–ससाधनो, चारागाह भूमि का जन सहभागिता द्वारा प्रबन्धन।	दीर्घ अवधि आधारित उत्पादक चारागाह भूमि का सुधार।
	(2) वानस्पातिक, यात्रिक और रसायनिक तरीको से टीबा स्थिरीकरण तकनीक पर शोध।	निजी स्वामित्व और सामुदायिक टीबो को उत्पादन के अन्तर्गत लाना।
	(3) खनन जलोत्सरण और लवणीयता रो अवह्यसित भूमि के पुर्नसुधार हेतु तकनीक।	पुर्नसुधार के साथ स्थानीय उत्पादक भू–उपयोग विकल्प।
कृषीय पद्धति	(1) जल–जलवायुगत प्रबन्धन अत्यधिक सिचाई, जैविक खेती और अन्य, जल व पौषक तत्त्व उपयोग की प्रभावकारिता बढाने के उपाय।	अधिकतम उत्पादन हेतु आशाजनक जल प्रयोग व छाद्यावरण प्रबन्धन।

लक्ष्य	लक्ष्य हेतु दिशा	निष्पादन मापदण्ड
सूखे की स्थितियाँ और कृषि तकनीक	(1) जैवीय दबाव हेतु सहनशील, पौधजल सम्बन्ध, जड वृद्धि प्रक्रिया कार्यिकी।	जलवायु आधारित फसल तकनीक।
	(2) एकीकृत पौषक प्रबन्ध जुताई सरक्षण, खरपतवार प्रबधन और फार्म अवशेष का पुर्नप्रयोग।	
जैव विविधता संरक्षण और आनुवांशिक सुधार	(1) शुष्क फसलो घास, झाडी, कृषिवानिकी पेडो का सकलन, परिचय, विकास, सरक्षण और प्रबधन।	किसानो द्वारा स्वीकार्य जीनोटाइप/किस्मो का चयन/विकास।
	(2) सूखा लवणनीयता और उच्च तापमान सहने व प्रतिरोध की जीनोटाइप का चयन, वर्गीकरण और विकास।	जलवायु परिवर्तन हेतु उपयुक्त किस्मो का विकास।
	(3) बीमारी, नाशी कीटो की प्रतिरोधी फसलो की किस्मो का विकास और शोधकर्त्ताओ हेतु ब्रीडिग मैटीरियल तथा जर्मप्लाज्म सग्रहण ।	जैव प्रतिरोधी जीनोटाइप चयन।
		जर्म प्लाज्म संकलन, सहभागिता।
पौध सुधार के जैव रासायनिक व आणविक प्रभाग	(1) जैविक दबाव सहनीय और सुधार कार्य क्रमो मे उनके प्रयोग हेतु जीनोटाइप का जैव रासायनिक और आणविक आंकलन।	विपरीत पर्यावरण स्थितियो हेतु जीनोटाइप चयन व विकास।
गुणवत्ता वाले बीज/पौधरोपण सामग्री उत्पादन में सुधार	(1) शुष्क क्षेत्रीय फसल/पेड/झाडी के गुणवत्ता वाले बीजो (प्रजनक और टी एफ एल बीज) और पौधरोपण सामग्री का उत्पादन और वृद्धि।	गुणवत्ता वाले बीज की मात्रात्मक वृद्धि।
	(2) गुणवत्ता वाले बीज/पौध रोपण सामग्री उत्पादन हेतु तकनीक विकास।	गुणवत्ता वाले बीज/तकनीक का विभिन्न स्तरो पर सुविधाजनक अनुमान।
सुरक्षित उत्पादन हेतु एकीकृत नाशी जीव प्रबधन	(1) रासायनिक कीटनाशको के प्रयोग के बिना बीमारियो, कीटो व कृमियो के प्रबधन हेतु जैव नियंत्रक एजेट और जैव रसायनो का चयन, गुणन और निर्माण।	जैव फार्मूलेशन और जैव रसायनो का विकास परीक्षण और गुणन प्रयोग।
	(2) जलावायुगत परिवर्तन के दबाव मे कृषीय पद्धति और समन्वित नाशी जीव प्रबधन मे नाशी कीटो, बीमारियों एव कृमियो हेतु परियोजना।	एकीकृत नाशी जीव प्रबध सारणी विकास व अपनाना, उपज वृद्धि व इसके सकारात्मक परिणाम।

लक्ष्य	लक्ष्य हेतु दिशा	निष्पादन मापदण्ड
सतत् पशुधन प्रबधन पद्धति, इसके अच्छे उत्पादन और उत्पादों के उच्च मूल्य हेतु	(1) चारा/बाटा के मूल्य सवर्धन पर शोध, पशुओ हेतु क्षेत्राधारित खनिज मिश्रण विकास, पशुस्वास्थ्य और रोग नियंत्रण प्रबधन।	पशु उत्पादन मे वृद्धि तथा तत्परिवर्ती पशुपालको की आजीविका मे सुधार।
पशु पालन में जलवायुगत चुनौतियों को दूर कर।	(1) पशु पालन के सदर्भ मे पौध सुधार के उपाय, अतिरिक्त खाद्य/उचित आवास आदि प्रबधन से अकाल प्रबधन।	पशुओ के स्वास्थ्य एवं उत्पादन मे सुधार।
क्षेत्र मे पशु प्रजातियों का बदलाव	(1) सिंचित क्षेत्रो मे भैंस के स्वास्थ्य, प्रजनन और उत्पाद का अध्ययन।	पशुओ के प्रजनन और उत्पादन में सुधार।
खाद्य और चारा की सुनिश्चित उपलब्धता	(1) स्थायी उपलब्ध चारा ससाधनो की पहचान और विकास तथा उचित पद्धति द्वारा चारा संग्रहण, प्रसस्करण एवं चारा बैंक की स्थापना।	सूखा प्रभाव व कमी का सामना करना।
सौर और अपारम्परिक ऊर्जा युक्तियों का विकास	(1) नये ऊर्जा और अन्य अपारम्परिक स्रोतों का आकलन।	विकसित पद्धति की सकार्यता सुनिश्चितता एवं प्रयोग मे सुधार।
	(2) सौर सेल और सहायक पॉवर सिस्टम का विकास।	ऊर्जा बचत और उच्च लाभ लागत अनुपात।
	(3) ग्रामीण एव कृषीय यत्रो की एकीकृत सरचना और युक्ति।	व्यावसायिक उपयोग हेतु प्रयोक्ता से सम्पर्क।
	(1) शुष्क कृषि हेतु पी वी आधारित पॉली हॉऊस, कूल चैम्बर सूक्ष्म सिचाई पद्धति।	दीर्घावधि निष्पादन।
फार्म मशीनरी और यत्रों का विकास	(1) उचित बीजाई युक्ति।	उच्च प्रभावकारिता के साथ नमी मे वृद्धि।
	(2) मशीनीकृत खरपतवार नियत्रण और देसी खाद वितरण।	फील्ड परीक्षण और लागत लाभ अनुपात मे सुधार।
	(3) फसल कटाई व सधारण हेतु उपयोगी यंत्र विकास।	कटाई प्रक्रिया को आसान बनाना।
पश्च फसल संधारण तकनीक	(1) कृषीय उतपादो मे मूल्य संवर्धन हेतु उपकरणो के विकास व प्रक्रिया का निर्धारण।	विकसित प्रक्रिया व अभियान्त्रिकी यत्रो के प्रभागो की नवीनता।

लक्ष्य	लक्ष्य हेतु दिशा	निष्पादन मापदण्ड
व मूल्य सवर्धन	(2) विकसित उत्पादो की गुणवत्ता का आकलन	उत्पादो के सही रहने के विभिन्न समयो मे उसकी गुणवत्ता।
	(3) उत्पादो के सही रहने के समय मे सुधार।	
तकनीक प्रदर्शन	(1) तकनीक प्रदर्शन हेतु उचित प्रक्रिया पद्धति का विकास।	कृषक के खेत पर स्वीकार्यता स्थिति।
	(2) प्रयोक्ता क्षमता वृद्धि।	तकनीकी ज्ञान को अद्यतन करना।
	(3) ग्रामीण ससाधन केन्द्रो मे सुदूर सवेदन तकनीक द्वारा एकीकृत ग्रामीण ससाधन प्रबधन।	कृषक स्तर की विभिन्न समस्याओ का समाधान।
सामाजिक, आर्थिक प्रबोधन और प्रभाव आकलन	(1) विकास और परिवर्तन के सामाजिक, आर्थिक प्रभाव और विभिन्न तकनीको का आकलन।	सामाजिक, आर्थिक विश्लेषण।
	(2) लैगिक मुद्दे और महिला सशक्तिकरण द्वारा क्षमता विकास।	आजीविका मे सुधार।
कृषि विपणन विकास	(1) कृषि व्यापार और निर्यात मे विभिन्न प्रयोक्ताओ का समावेशन।	कृषको को अच्छी अधिक आय प्राप्ति हेतु नीतिगत निर्णय।
	(2) बाजार सबद्धता और कृषि उत्पाद श्रृंखला।	
राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रशिक्षण द्वारा क्षमता प्रवर्धन	(1) कुशल मानव शक्ति द्वारा शोध प्रभावकारिता सुधार।	क्षमता सुधार।

(स्रोत काजरी विजन 2030)

मानसूनी जलवायुगत क्षेत्र में स्थित होने के कारण थार मरूस्थलीय क्षेत्र विश्व का सघन रूप से बसा जनसख्या वाला रेगिस्तान है। जहॉ उच्च जनसंख्या दबाव और सीमित प्राकृतिक संसाधनो के विषम प्रयोग के कारण इसके कई क्षेत्रो मे संसाधनों के अवह्रास व पानी की कमी की समस्या आ रही है। अन्य प्रमुख सकट जलवायु परिवर्तन तथा तापमान वृद्धि से आ रही समस्या व वर्षा की कमी है। इन संभावित संकटों के कारण इन क्षेत्रो में कृषि का भविष्य भी अनिश्चित है। फिर भी क्षेत्र मे मनुष्य व पशुओ की जनसख्या के पालन–पोषण हेतु पर्याप्त उत्पादन सुनिश्चित करना है।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसधान सस्थान का स्वप्न सुप्रबंधित और जलवायु–रोधी शुष्क भूमि का विकास है, जहॉ विशाल ग्रामीण समुदाय प्रकृति के साथ सामजस्य बैठाकर सतत् कृषि द्वारा अपनी आजीविका व जीवनयापन के साधन प्राप्त कर सके। संस्थान वातावरण–जीव–जलवायु के बीच उचित समझ एव सामजस्य हेतु प्रयासरत है। भूमि की समस्याओ के निवारण हेतु समय परीक्षित और वहनीय तकनीक का विकास करना है। पशुपालन आधारित खेती, कृषि वानिकी, कृषि विविधीकरण, कृषि सरक्षण और चारागाह भूमि संरक्षण ऐसे मुद्दे है जिन पर हमेशा ध्यान देना व निरन्तर शोध करना होगा ताकि भविष्य के दबाव को फसल, भूमि आदि सहन कर सके व उन्हे अधिक उत्पादक बनाया जा सके। "काजरी" कृषको की सेवा हेतु इन्ही उद्देश्यों के साथ सतत् संघर्षशील है व रहेगी।

अनुसंधान उपलब्धियाँ

सस्थान ने मरू पारिस्थितिकी का पुनरूद्धार, मरूस्थल के प्राकृतिक संसाधनो का सर्वेक्षण एव उन समुचित उपयोग द्वारा कृषकोपयोगी कई नवीन तकनीके विकसित की है। इसके अतिरिक्त "काजरी" द्वारा राज्य एव केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागो हेतु क्षेत्र विशेष के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सूचनाएँ सृजित की गयी है। इनका सरकार की कृषि एव ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाओ मे उपयोग किया गया है। अनुसंधान यात्रा के पिछले पचास वर्षो मे अनुसंधान और विकास की गतिविधियों द्वारा मरूस्थल के लोगो का जीवन स्तर सुधाराना "काजरी" का प्रमुख लक्ष्य रहा है। संस्थान की प्रमुख उपलब्धियो का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

प्राकृतिक संसाधन सर्वेक्षण, मरूस्थलीकरण, जल एवं भू–प्रबंधन

संसाधन सर्वेक्षण

किसी भी क्षेत्र का चहुँमुखी विकास तभी सभव है जब उस क्षेत्र का पूर्ण सर्वेक्षण ब्यौरा उपलब्ध हो तभी आगे की विकास यात्रा प्रारभ की जा सकती है। "काजरी" का प्रथम उद्देश्य शुष्क क्षेत्र के प्राकृतिक ससाधनो का सर्वेक्षण रहा है। "काजरी" के प्राकृतिक ससाधन एवं पर्यावरण विभाग द्वारा इस क्षेत्र के एकीकृत सर्वे द्वारा यहाँ के प्राकृतिक ससाधनो का अध्ययन व अनुसंधान किया गया। शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो के विभिन्न हिस्सो मे राजस्थान, गुजरात, हरियाणा व महाराष्ट्र मे इस प्रकार के एकीकृत सर्वे किए गए। अभी तक राजस्थान के करीब 72 2 प्रतिशत या 0.14 मिलियन वर्ग कि. मी शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्र का सर्वेक्षण किया जा चुका है। 1979 में लूणी बेसिन का प्राकृतिक व मानव ससाधनों का एकीकृत सर्वे का कार्य राजस्थान सरकार हेतु पूरा किया गया। इसी प्रकार चुरू, गगानगर और जैसलमेर जिलो में 79,850 वर्ग किमी क्षेत्र का सर्वेक्षण और मानचित्रण का कार्य किया गया है।

सस्थान ने राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास निगम हेतु जोधपुर, पाली, अजमेर, चुरू और टोक जिलो की बजर भूमि के सर्वे आधारित मानचित्र तैयार किए है। इसमें इन जिलो का करीब 37 4 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र बंजर भूमि के अर्न्तगत वर्गीकृत किया गया है। क्षेत्रीय विकास योजनाओं हेतु राजस्थान राज्य के लिए समस्या आधारित विस्तृत सर्वे के चार मानचित्र (भेड पारिस्थितिकी, भूजल और कृषि) प्रकाशित किए गए। जिससे राजस्थान के कृषीय मानचित्र में यहाँ की भौतिक, जैवीय, सामाजिक और आर्थिक सन्दर्भों पर उपलब्ध सूचनाओ को दिखाया गया है। इस मानचित्र में उन बिन्दुओं को भी दिखाया गया जहाँ मूल स्रोतो के अध्ययन की अति आवश्यकता है। इस प्रकार यह मानचित्र भारतीय मरूक्षेत्र के वर्गीकरण और उसके विकास हेतु परियोजनाएँ

बनाने तथा एकीकृत सर्वे हेतु क्षेत्रो के चयन मे बहुत सहायक है। इस संस्थान ने अपने पॉच दशक की यात्रा के दौरान इस क्षेत्र की मरूस्थलीकरण प्रक्रिया को समझने मे बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

राजस्थान के भू–जल के तीस मानचित्र बनाए गए जिनमें विभिन्न जिलो के भू–जल, उसके उपयोग और प्रकार को दिखाया गया है। इन सर्वे द्वारा यहॉ के ससाधनो के सर्वोत्तम प्रयोग सम्बंधी सूचनाएँ तैयार की जा सकी। विभिन्न संगठनों विकासीय विभागो जैसे रक्षा संगठनो, लोक निर्माण विभाग, जन स्वास्थ्य अभियान्त्रिकी विभाग, भू–जल विभाग, मरू विकास बोर्ड द्वारा इन मानचित्रो का प्रयोग किया जा रहा है। राजस्थान के जनगणना विभाग ने जनसख्या ऑकडा तैयार करने हेतु "काजरी" द्वारा तैयार किया गया मानचित्र अपनाया है।

अकाल से निपटने की तकनीकों का सरकारी अधिकारियो को प्रशिक्षण देने एवं नीति निर्माण मे सरकार के साथ "काजरी" ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

"काजरी" ने राष्ट्रीय मरूस्थलीकरण मानचित्रण और प्रबोधन कार्यकारी समूह के सदस्य के रूप में टीपीएन–1 मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संयुक्त राष्ट्र सघ की मरूस्थलीकरण नियत्रण बैठक मे "काजरी" को कृषि वानिकी और मृदा सरक्षण की गतिविधियों द्वारा एशिया मे मरूस्थल नियंत्रण टीपीएन–2 के अन्तर्गत समन्वयक बनाया गया। "काजरी" ने आस्ट्रेलिया, जापान, अमेरिका, रूस की अन्य जानी मानी सस्थाओ के साथ सामूहिक अनुसंधानात्मक कार्य भी किया है।

मौसम पूर्वानुमान

सन् 1988 से राष्ट्रीय कृषि मौसम सुझाव पूर्वानुमान केन्द्र, नई दिल्ली से मध्यावधि मौसम पूर्वानुमान देश के विभिन्न क्षेत्रो के लिये सप्ताह मे दो बार जारी किया जाता है। इसके द्वारा जोधपुर एव आसपास के क्षेत्रों के लिये मौसम की जानकारी "काजरी" जोधपुर के द्वारा दी जाती है। मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान की मदद से कृषि मे होने वाले जोखिम को काफी हद तक कम किया जा सकता है जैसे बरसात पूर्वानुमान होने पर किसान सिचाई बन्द कर सकते है जिससे ट्यूबवैल पर खर्च होने वाली बिजली, श्रम एव पानी की बचत होगी। पाले की रोकथाम, नाशीकीट प्रबधन, खाद एव उर्वरक देने मे, पशुओ को गर्मी व सर्दी से बचाव आदि मे पूर्वानुमान से मदद मिलती है।

पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्रो के मौसम सम्बधी ऑकडो का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। कृषको को सप्ताह मे दो बार कृषि सलाह देने हेतु "काजरी" मे कृषि सलाहकार समिति गठित है।

लवणीय तथा क्षारीय मृदाएँ एवं उनका निदान

राजस्थान प्रदेश का एक बड़ा भू–भाग लवणीयता एव क्षारीयता (लगभग 106 लाख हैक्टर) की समस्या से प्रभावित है। लवणीयता एव क्षारीयता वाले क्षेत्रो मे कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है और कही कही पर उत्पादन शून्य के बराबर पहुँच गया है। समस्या का मुख्य कारण तेलीय एवं खारे पानी से सिचाई है हालाकि कई अन्य कारण जैसे अर्धशुष्क तापमान, कम वर्षा, अधिक वाष्पन, तालाब व नहरो से सिचित क्षेत्रो मे भूमिगत जल स्तर बढने एवं पानी के अधिक रिसाव आदि भी मिट्टी में लवणीयता एवं क्षारीयता के लिए उत्तरदायी है।

लवणीय मृदा

ये वे मृदाएँ हैं जिनमें जल घुलनशील उदासीन लवणों मुख्यत: सोडियम कैल्शियम एव मैग्नेशियम के क्लोराइड व सल्फेट की प्रचुरता होती है। इसी कारण मृदा की ऊपरी सतह पर सफेद रग का नमक सा जमा होता है। इन मृदाओ का पी एच मान 8.2 से कम एव विद्युतचालकता (ईसी) 4.0 डेसी सीमेन्स प्रतिमीटर या इससे अधिक तथा विनिमय योग्य सोडियम 15 प्रतिशत से कम होता है जिसका फसलो पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है जैसे पौधो में पानी की प्राप्यता कम होना, पौधो की बढवार धीरे होना, बीज के अकुरण मे देरी, लवणो की अधिकता के कारण पौधो में सूखे की स्थिति मालूम पडना एव पोषक तत्वो फॉस्फोरस, नाइट्रोजन, जस्ता, लोहा इत्यादि की उपलब्धता मे कमी आदि।

क्षारीय मृदा

ऐसी मृदा को ऊसर भूमि भी कहते है। क्षारीय मृदाओ की दशा बहुत असतोषजनक होती है। इनमे सोडियम बाईकार्बोनेट, विनिमय योग्य सोडियम तथा सोडियम सिलिकेट लवणो की प्रचुरता होती है। इन मृदाओ का पी.एच. मान संतृप्तावस्था मे 8.2 या इससे अधिक, विद्युतचालकता (इसी) 4.0 डेसी सीमेन्स प्रति मीटर से कम तथा विनिमय योग्य सोडियम 15 प्रतिशत या इससे अधिक होता है। ऐसी मृदाओं की पहचान निम्न बिन्दुओं द्वारा की जा सकती है।

- मृदा की ऊपरी सतह पर दरार युक्त मोटी पपड़ी होने के कारण पानी को नीचे जाने से तथा फसलो के अंकुरण मे समस्या।
- वर्षा का पानी काफी दिनों तक एकत्रित रहना, देरी से सूखना तथा सूखने पर भूमि मे दरारे पडना।
- मृदा की भौतिक संरचना में विकृति आना।
- पौधो मे बोरॉन, फ्लोरिन इत्यादि की उपलब्धता बढ जाने से फसलो पर प्रतिकूल प्रभाव।
- जीवांश पदार्थ बहुत कम या न के बराबर होना।

लवणीय क्षारीय मृदा

ऐसी मृदा जो लवणीयता व क्षारीयता दोनो से प्रभावति हो उसे लवणीय क्षारीय मृदा कहते है। इन मृदाओं के सतृप्त तत्व की विद्युतचालकता 40 डेसी सीमेन्स प्रति मीटर या अधिक तथा विनिमय योग्य सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक होता है। उनका पी.एच. मान 85 होता है परन्तु ये लवणो की विभिन्नता पर निर्भर करता है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का सुधार

"काजरी" जोधपुर द्वारा समय–समय पर इस प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त मृदाओ मे सुधार हेतु कई वर्षों से अपना अनुसंधान, जो किसानों की पहुँच के अन्दर हो, किसान के खेतो पर किया गया। अभी हाल में इसी श्रृखला मे बाडमेर के बुडीवाडा एव जोधपुर के धुन्धाडा गॉवो में तेलीय एव खारे पानी द्वारा लगातार सिंचाई वाली मृदाओ मे इसका अनुसधान किया गया।

- **निक्षालनः** "काजरी" द्वारा सस्तुति यह विधि उन मृदाओ मे अधिक प्रभावी है जिनमे भूमि जल स्तर नीचा हो। इस क्रिया द्वारा लवणो को जल में विलेय करके जड क्षेत्र से नीचे बढाया जाता है ताकि पौधो पर लवणो का बुरा प्रभाव न हो सके। ग्रीष्म ऋतु निक्षालन के लिए अति उत्तम होती है। इस विधि मे खेत को छोटे–छोटे टुकडो मे बॉटकर उसकी मेडबन्दी करके खेत मे प्रर्याप्त मात्रा मे पानी भर देते है जिससे मृदा मे उपस्थित लवण घुलकर नीचे चले जाते है।
- **विलय लवणों को ऊपरी सतह से बहानाः** इस में खेत को आठ दस हिस्सो मे बॉटकर उसकी क्यारियॉ बना देते है। फिर सभी क्यारियों मे 8 से 10 इंच ऊपर तक पानी भर दिया जाता है जिससे सतही लवण पानी मे घुल जाते है बाद में पानी के खेत से बाहर बहा देने से लवणो की अधिकाश मात्रा बाहर निकल जाती है जिससे मृदा में लवणो की मात्रा कम हो जाती है।
- **जिप्सम द्वारा मृदा उपचारः** तैलिया या खारे पानी से लगातार सिंचाई करने पर मिट्टी क्षारीय हो जाती है व सूखने पर अत्यधिक कठोर हो जाती है तथा सिंचाई या बरसात का पानी सतह पर ही इक्ट्ठा हो जाता है। इस तरह की मृदाओ मे बुआई करने पर बीजों का अंकुरण पूरी तरह से नही हो पाता है। ऐसी मृदाओ के सुधार हेतु जिप्सम की आवश्यक राख (5–8 टन प्रति हैक्टेयर) को फसल लगाने से 10–15 दिन पहले केवल 10 से.मी. ऊपरी सतह मे मिलाकर पानी भर देना चाहिए। जब पानी भूमि में रिम जाये उसके बाद फसलोत्पादन की सारी प्रक्रिया शुरू करे।

मृदा पपड़ी प्रबन्धन

बुवाई के पश्चात् एव अकुरण से पहले वर्षा होने पर जब तेज धूप निकलती है तो शुष्क क्षेत्र की मृदा मे सिल्ट की उपस्थिति के कारण कुछ फसले जैसे बाजरा, तिल इत्यादि का अंकुरण प्रभावित होता है और सतह पर पपडी निर्मित हो जाती है जिससे प्रति ईकाई पौधो की संख्या बहुत कम रह जाती है जिसके कारण फसल उत्पादन मे कमी होती है। इस समस्या के निवारण हेतु बुवाई के पश्चात् कूँडो मे गोबर की खाद 5 से 10 टन प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करने पर पौधों की संख्या एवं उत्पादन मे 70 प्रतिशत तक बढोतरी पायी गयी है।

मरूस्थलीकरण प्रबोधन

बढती मानव व पशु जनसख्या से भूमि पर दबाव बढ रहा है व इसका क्षमता से अधिक विदोहन हो रहा है जो मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया को बढा रहा है। मरूस्थलीकरण एक प्रकार से मानव जनित समस्या है। "काजरी" ने उपलब्ध संसाधनो के उचित प्रबधन द्वारा मरूस्थलीकरण नियंत्रण हेतु कई तकनीकियॉ सुझाई हैं। राजस्थान का 23885 वर्ग कि.मी. क्षेत्र मरूस्थलीकरण से प्रभावित है। "काजरी" द्वारा इस प्रक्रिया का अध्ययन, इसके कारण तथा निवारण के उपायों को वर्गीकृत किया गया। इनमे प्रमुख है– छायादार वृक्ष पट्टिका लगाना, क्षेत्रीय भूमि पर मृदा सरक्षण, टीबा स्थिरीकरण, जल संसाधनो का सर्वेक्षण, सिचाई की प्रभावकारी पद्धति जैसे फव्वारा सिचाई पद्धति, जिप्सम द्वारा लवणीय जल का फसल हेतु प्रयोग, मरू क्षेत्र वानिकी, कृषि वानिकी, चारागाह वानिकी, मरू औद्यानिकी, आदि है। इन तकनीको के द्वारा रेगिस्तानीकरण प्रक्रिया को नियत्रित करने मे सहायता मिली है।

भारतीय रेगिस्तान के संभावित विस्तार को मानचित्रों की श्रृंखला जिन्हें भू–आकारिकी और अन्य आकारिकी प्रभागो के अनुसार तैयार किया गया, द्वारा अध्यनित किया गया। रेगिस्तानी और सीमान्त क्षेत्रो के आर्थिक प्रभागों जैसे भू–जल प्रयोग, जल उपलब्धता और फसल–उत्पादन–निष्पादन के मात्रात्मक व तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भी समस्या को परीक्षित किया गया। सभी उपलब्ध साक्ष्य यह इगित करते है कि थार मरूस्थल पूर्व की तरफ नही बढ रहा है। विशेषतः भौतिक, जैवीय और सामाजिक प्रभागो को रेगिस्तानीकरण प्रक्रिया को चिन्हित करने वाले प्रभागो के रूप मे पहचाना गया।

जल संसाधन विकास एवं प्रबंधन

"काजरी" ने शुष्क क्षेत्रों के जल संसाधन के विकास में बहुत योगदान दिया है। पानी की मॉग को सुधारने हेतु उन्नत "टांका" (भूमिगत वर्षा जल सग्रहण का तरीका) की तकनीक विकसित की है। फसलीय भूमि मे पानी संग्रहण के लिए मेढ बॉधना, छायाकरण और चिकनी मिट्टी का अर्द्ध तलीय अवरोधक के रूप मे प्रयोग करना

लाभकारी पाया गया। एक नई देशी युक्ति जिसमे सीमित जल से पेडो को लगाना (दोहरी मिट्टी के बर्तनः'गमला मे') "जलतृप्ति" को विकसित किया गया।

थार रेगिस्तान का बहुत बडा भाग हमेशा ही बरसात के पानी पर निर्भर होने के कारण वर्षा जल सग्रहण के विभिन्न तरीके अपनाये जाते रहे है जैसे टाका, तलई, नाडा–नाडियॉ, तालाब, खडीन, सागर, समद आदि जो सदियो से यहॉ की सस्कृति से ही जुड गये। पश्चिमी राजस्थान मे पीने के पानी की पूर्ति 42 प्रतिशत नाड़ी द्वारा, 35 प्रतिशत टाको से, 15 प्रतिशत कुँओ से तथा 8 प्रतिशत अन्य स्त्रोतों से पूरी की जाती है।

पारम्परिक टांका

मरूस्थल मे टाको का प्रचलन सर्वाधिक व कई सालो से होता रहा है। टांको का निर्माण खेतो, घरो, गढो व किलो में बरसात के जल के संग्रहण के लिये किया जाता रहा है। इनका प्रचलन बीकानेर, बाड़मेर व जोधपुर सभाग मे अधिक रहा है। खेत मे टाका ढलान पर व घरों के पास ऊँची जगह पर बनाया जाता है जिससे पानी आसानी से टाके मे जा सके और आस–पास का गंदा पानी उसमें नहीं जाये। टाका प्रायः गोल आकार का ही बनाते है, परन्तु हवेलियो व किलो में चौकोर आकार के टाके भी बने हुए है।

बीकानेर सभाग में किसान खलिहानों व खेतों में छोटे (3 मीटर गहरा व 2 मीटर व्यास) टाके बनाकर बरसात के पानी का सग्रह करते हैं इस प्रकार के एक टाके मे लगभग 10,000 लीटर पानी का संग्रह किया जा सकता है। टांके की छत बनाने में अधिकतर पत्थर की पट्टियो का उपयोग किया जाता है। गरीब लोग ऊपर से खुला टाका भी बनाते हैं और सूखी झाडियों/टहनियों द्वारा वाष्पीकरण रोकते है। परम्परागत तौर पर निजी टाके प्रायः घर के आगन या चबूतरों मे बनाये जाते है, जबकि सामुदायिक टाको का निर्माण पचायत भूमि मे किया जाता है। जिस स्थान का वर्षा–जल टांके मे एकत्रित किया जाता है उसे पायतान या आगोर कहते है और उसे वर्ष भर साफ रखा जाता है।

बहुउद्देश्यीय उन्नत टांका– आज की जरुरत

थार रेगिस्तान में बहुत बडे भू–भाग में आज भी पेयजल की उपलब्धता एक गम्भीर समस्या है। महिलाएँ आज भी पेयजल के लिये मीलों दूर तपती दुपहरी में जाने के लिये विवश है। इस समस्या का स्थायी समाधान निजी तौर पर टांकों मे स्थानीय वर्षाजल सचयन के द्वारा ही किया जा सकता है। "काजरी" ने शोध द्वारा टांके के परम्परागत स्वरुप को बहुउद्देश्यीय, उन्नत व परिष्कृत किया है।

"काजरी" संस्थान ने पक्के गोल टाकों की उन्नतशील डिजाइन तैयार की है जो कि राजीव गांधी पेयजल योजना के दौरान काफी प्रचलित हुई। यह डिजाइन अब गॉवो में खूब लोकप्रिय है।

खड़ीन

खडीन मुख्यत जैसलमेर जिले का परम्परागत वर्षा जल के संग्रहण का मुख्य साधन है। ऐतिहासिक तौर पर जैसलमेर मे खडीनों का प्रचलन पालीवाल प्रथा की देन है। जैसलमेर मे जहॉ एक तरफ सुनहरे चमकते रेतीले टीबों की भरमार है तो दूसरी ओर पथरीली, उबड–खाबड भूमि तथा निर्जन पहाडियों की भी कमी नही है। पहाडियो के बीच वर्षा जल का इकट्ठा होना ही खडीन का प्रारूप माना जाता है। इस इकट्ठे हुए जल का उपयोग अधिकतर पशुओ के लिये किया जाता है तथा पानी के सूखने पर वहॉ खेती भी की जाती है या इसमे पनपी घास पशुओ के चरने के काम आता है। खडीन के पेटे में या बन्ध के दूसरी ओर छोटी व कम गहरी कुइयॉ बनाने का भी प्रचलन है। "काजरी" द्वारा खडीन पर विस्तृत शोध किया गया।

सतही जल संसाधन

भारतीय शुष्क क्षेत्र मे अनवरत बहने वाली नदियों के अभाव मे सतही जल ससाधनों की बहुत कमी है। पश्चिमी राजस्थान मे छोट–बडे करीब 550 जलाशय हैं, जिनकी क्षमता 15 से 2080 लाख घन मीटर तक है। इनकी कुल उपयोग क्षमता करीब 11693 लाख घन मीटर है। लूनी बेसिन का क्षेत्र पूर्वी भाग का सबसे बडा सतही जल ससाधन स्रोत है, जिसकी कुल बहाव क्षमता 8690 लाख घन मीटर है। इसमें से कुल 3860 लाख घन मीटर पानी का ही उपयोग हो पाता है। पश्चिमी राजस्थान की समस्त नदियों की बहाव क्षमता करीब 11320 लाख घन मीटर है, जिसमे से केवल 5310 लाख घन मीटर पानी का ही उपयोग हो जाता है। इसके संरक्षण व उचित प्रयोग हेतु "काजरी" द्वारा अनुसधान किये गये।

भूमिगत जल

भूमिगत जल की वर्तमान स्थिति के हिसाब से पश्चिमी राजस्थान के करीब 21 86 प्रतिशत भाग में भूमिगत जल का अधिकतम दोहन हुआ है। 21.42 प्रतिशत क्षेत्र में जल की उपलब्धता सामान्य है तथा 52.92 प्रतिशत क्षेत्र मे भूमिगत जल की मात्रा बहुत कम है। कुल औसत रिचार्ज 29575 लाख घन मीटर है, जिसमें से करीब 24354 लाख घन मीटर जल का सिचाई के लिये उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार कुल जल 12931 लाख घन मीटर रह जाता है। भूमिगत जल मे समायोजित सोडियम अधिशोषण अनुपात तथा अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की अधिक मात्रा के कारण अधिकतर पानी खारा व सोडिक है। भू–जल 8 मीटर से 105 मीटर गहराई तक मिलता है। इसके सर्वेक्षण एव अध्ययन के पश्चात् "काजरी" ने जल पुर्नभरण, कम पानी मे उपजने वाली फसलो का चयन, बूँद–बूँद सिचाई पद्धति आदि तकनीके विकसित किये है।

जिप्सम खनन से बंजर हुई भूमि

देश के 90 प्रतिशत जिप्सम का उत्पादन राजस्थान राज्य मे होता है और 970 मिलियन टन इसके पास सरक्षित है। जिप्सम सीमेट और उर्वरक उद्योगो, बिल्डिंग,

जल है तो कल है – काजरी द्वारा विकसित उन्नत टांका

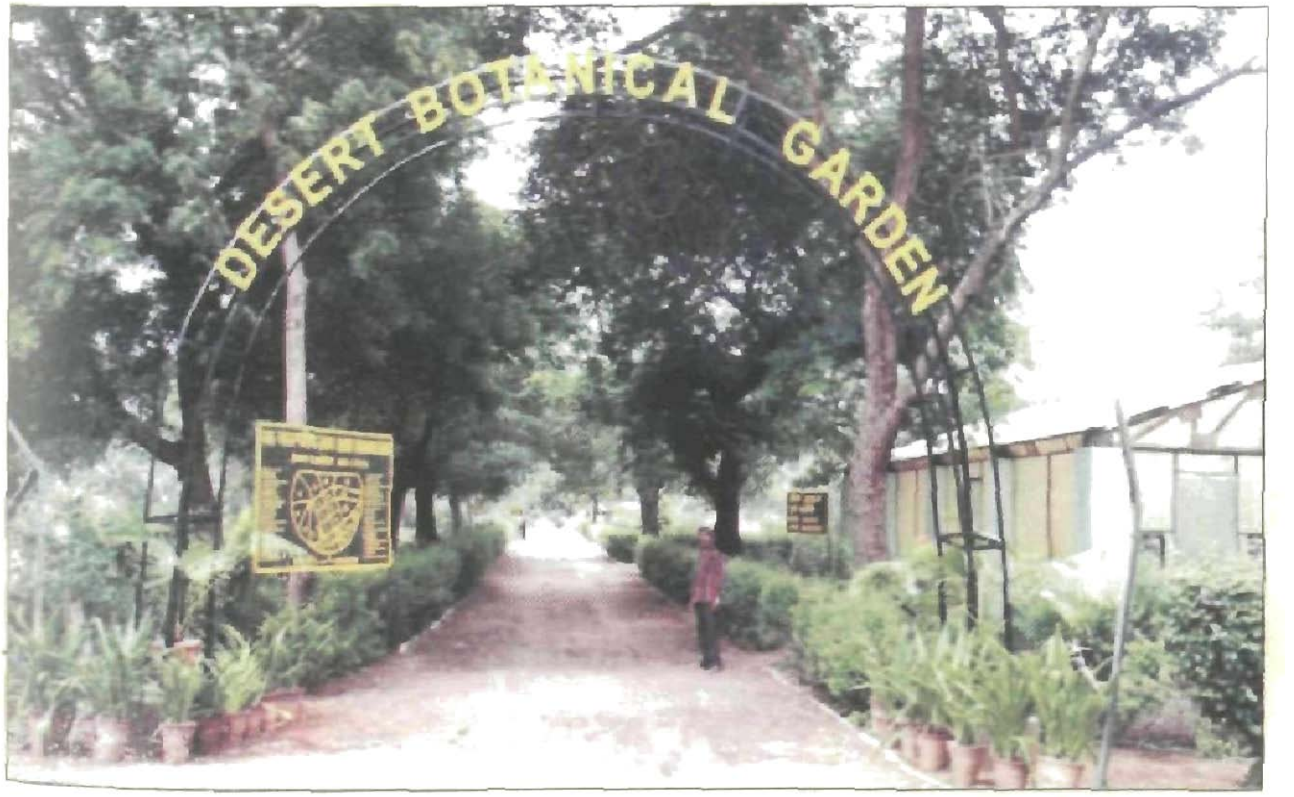

देशी–विदेशी वानस्पतिक प्रजातियों का संग्रह – काजरी स्थित लीड वानस्पतिक उद्यान

प्लास्टर ऑफ पेरिस और क्षारीय मृदा के सुधार मे कच्चे माल के रूप में उपयोगी है। जिप्सम की खानों से बंजर हुई भूमि विकास हेतु "काजरी" ने चारा–वन क्षेत्र विकसित करने की पद्धति के अन्तर्गत आशाजनक सामंजस्य, जल सग्रहण, मृदा तल मे सुधार और सुधरी पौध जातियॉ लगाने की तकनीक विकसित की है।

सूक्ष्म जल सग्रहक और अर्द्धचन्द्राकार वर्षा जल सग्रहक निर्मित किये गये। मृदा तल को देसी खाद द्वारा सुधारा गया। पौध जातियॉ जैसे *टेमिरिक्स एफीला, सल्वाडोरा ओलीडिस* और *संस्सीडीयम फलोरिडम* के साथ देसी घास जिप्सम खनन से बंजर हुई भूमि के सुधार हेतु प्रभावकारी पाये गये।

विशिष्ट सर्वेक्षण कार्य

समग्र विकास हेतु एकीकृत मिशन

आई.एम एस डी परियोजना के तहत प्राकृतिक संसाधनो का मानचित्रण 1:50,000 पैमाने पर जैसलमेर जिले की पोकरण तथा जालोर जिले की रानीवाड़ा व भीनमान तहसीलों के लिए पूरा कर लिया गया है। इसमें भूमि तथा जल संसाधन के विकास के लिये कार्य योजना भी बनाई गयी है।

कायलाना जलग्रहण क्षेत्र विकास

जोधपुर के पास कायलाना जलग्रहण क्षेत्र के विकास के लिये जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के लिये ससाधनों का विस्तृत सर्वेक्षण करके विकास योजना तैयार की गयी।

प्रमुख भू–संसाधन इकाइयों का परिभाषन

ससाधन सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्यो की उपयेगिता को विकास योजनाओ में शामिल करने के उद्देश्य से सभी ससाधनों को एकीकृत करके प्रमुख भू–ससाधन इकाइयों मे विभक्त करने का कार्य किया गया। ऐसी प्रत्येक इकाई का वर्तमान भूमि उपयोग, प्रबन्ध तथा उत्पादकता को ध्यान मे रखकर उसके समग्र विकास के विभिन्न आयाम तथा उपचार प्रस्तुत किये गये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष परियोजना

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष परियोजना के तहत बीकानेर के छ गॉवों तेजरासर, पेमासर, बायलू, नौरंगदेसर, पॉपलसर व गोसाईसर का विस्तृत संसाधन सर्वेक्षण करके विकास योजना तैयार की गयी। इसी प्रकार राजस्थान सरकार के लिए डीडीपी/टीओटी परियोजना के अन्तर्गत ग्यारह गॉवो का विस्तृत संसाधन सर्वेक्षण कर विकास के लिए उचित उपाय सुझाए गये।

सुदूर संवेदन तकनीक द्वारा मरूस्थलीकरण का अध्ययन

सुदूर सवेदन सेवाकेन्द्र, जोधपुर के साथ मिलकर भू–उपग्रह से प्राप्त ऑकडों का अंकीय विश्लेषण करके रेत का कटाव व जमाव, गोचर भूमियों के क्षेत्र तथा

वनस्पति के ह्रास तथा जैसलमेर जिले के सेवण घास क्षेत्र का अध्ययन किया गया, जिससे सामने आये महत्वपूर्ण तथ्य इनके उचित उपयोग व प्रबधन के लिए आधार साबित होगे।

लवण प्रभावित मृदाओं का मानचित्रीकरण

उत्तरी–पश्चिमी शुष्क क्षेत्र की क्षारयुक्त जमीन का मानचित्रीकरण 1 250,000 पैमाने पर पूरा किया गया जो मृदा प्रबंधन की रणनीति बनाने मे अत्यंत कारगर है।

कपड़ा औद्योगिक इकाइयों के प्रदूषित जल का प्रबन्ध

पिछले दशक मे राजस्थान ने उद्योग के क्षेत्र मे काफी उन्नति की है। हाल ही मे किये गए एक सर्वेक्षण के अनुसार राजस्थान में लगभग 125 बडी श्रेणी की और 149 मध्यम श्रेणी की इकाइयों से प्रतिदिन 30 लाख घन मीटर प्रदूषित जल सृजित होता है।

जोधपुर, पाली और बालेतरा के कपडा उद्योगों से विसर्जित प्रदूषित जल की मात्रा प्रतिदिन क्रमश 80, 100 और 70 लाख लीटर है। इस पानी के विशलेषण से पता चला है कि इसमे रासायनिक रग, सोडियम व क्षार की मात्रा बहुत अधिक है। पीने लायक पानी में पी.एच. मान 7 से 7.5 तक रहता है, जबकि इन इकाइयों से विसर्जित पानी मे पी एच. मान 9 0 से 11.0 है और हानिकारक तत्वों शीशा व कैल्शियम से युक्त है।

राजस्थान सरकार के अनुरोध पर जोजरी, बाडी तथा लूनी नदी के आस–पास के क्षेत्रो का विशेष अध्ययन कर जोधपुर, पाली और बालोतरा शहरों के रगाई व छपाई कारखानो से निकलने वाले प्रदूषित जल के विभिन्न भू–ससाधनो पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावो का मूल्याकन किया गया। कृषि भूमि, फसलो तथा उनकी पैदावार, वनस्पति तथा सतही व भूमिगत जल पर दुष्प्रभाव को ऑका गया। इसके आधार पर इन प्रभावित ससाधनो को सुचारू रूप से सुधारा जा सकता है।

"काजरी" द्वारा ऐसी विधि विकसित की गयी है, जिससे इस प्रदूषित जल से वनारोपण किया जा सकता है। इस तकनीक से पर्यावरण मे सुधार होगा और प्रदूषित जल का सदुपयोग हो सकेगा। इस तकनीक से रोहिडा, नीम, इजराइली बबूल, विदेशी बबूल, *यूक्लिप्टस, हार्डविकिया, मोपेन,* खेजड़ी, बेर व अनार के पौधों का प्रदूषित पानी से सफलतापूर्वक रोपण किया गया।

तकनीकी उद्यान में औषधीय पौधे के कृषिकरण का प्रदर्शन

भारत के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों मे पाये जाने वाले औषधीय पौधों में से कुछ महत्वपूर्ण पौधो के कृषिकरण की तकनीकी, "काजरी" स्थित उद्यान मे देख सकते है। इन पादपो के नाम तथा उनका औषधीय महत्व निम्नालिखित है –

1 ग्वार पाठा · उदर रोग, यकृत के विकारो, चर्म रोगों, जलने आदि पर गुणकारी

2. सोनामुखी कब्जनाशक, पेट के कीडे मार देता है।
3. ग्वारपाठा (मीठा) गठिया, वायु विकारो मे गुणकारी
4 निर्गुन्डी इसकी पत्तियो का उकाला जोडो के दर्द को ठीक करता है।
5. गुग्गुल : आयुर्वेद का महायोग औषध, हृदय रोग, गठिया कोलेस्ट्रोल की समस्या मे गुणकारी
6 सरफोका (बियानी) यकृत के सभी रोगो मे गुणकारी
7 वसाका · कफ नाशक, खॉसी बुखार मे अति लाभदायक
8. अश्वगन्धा · शक्तिवर्धक, गठिया एव वायु बुखार मे हितकारी
9 सदाबहार : मधुमेह (शुगर), कैन्सर उपचार मे लाभकारी
10. शतावरी · शक्तिवर्धक, मूत्रवर्धक, शीतक
11. गिलोय · बुखार, पीलिया में लाभदायी, कैन्सर हेतु वरदान औषधि
12. दमाबेल : दमा की बीमारी, श्वसन विकारों में उपयोगी
13. वज्रदन्ती दॉत विकारो में उपयोगी
14 तुलसी · वाइरल बुखार, खॉसी, कैन्सर उपचार मे उपयोगी
15 कौच : पौरुष शक्तिवर्धक टॉनिक
16 जमालघोटा · पेट विकारो मे उपयोगी।

मरु वानस्पतिक उद्यान

"काजरी" परिसर मे लगभग 20 एकड क्षेत्र में अवस्थित मरू वानस्पतिक 40 वर्ष पूर्व स्थापित किया गया है। इस उद्यान को 24 विभिन्न भागो मे बांटा गया है। इस उद्यान मे विशेष तौर से शुष्क क्षेत्रो मे उगने वाले पौधो को लगाया गया है ताकि इनकी शुष्क क्षेत्रो में उगने की संभावनाओं का पता लगाया जा सके। इस उद्यान में 150 प्रजातियो के पौधे हैं जिनमे वृक्ष, झाड एव अन्य छोटे पौधे और लताये सम्मिलित है। रंग बिरगे फूलो वाली 18 बोगनवेलिया की प्रजातियॉ जो कि यहॉ की जलवायु के लिये उपयुक्त है इस उद्यान में लगाई गयी है। केक्टस एवं रसीय पादपो की लगभग 50 प्रजातियॉ एक विशेष ब्लाक में लगायी गई है। इनमें केक्टस एवं ग्राफ्टेड केक्टस देखने योग्य है। केक्टस की एक प्रजाति जो कांटा रहित थोर के नाम से जानी जाती है, वह पशुओ को सूखे चारे के साथ मिलाकर खिलाने के काम आती है।

औषधीय पौधों के ब्लाक मे एक वर्षीय एवं बहुवर्षीय लगभग 60 प्रजातियां लगाई गई है इनमे सर्पगन्धा, गुगुल, सिन्दूरी चित्रक, बहेडा, अस्थमा बेल, गिलोय, शतावरी, खस, सागर गोटा, बडा गोखरु, हरमल, खीरखीप, हडजोड इत्यादि प्रमुख है।

ग्वार पाठा ब्लाक मे पश्चिमी राजस्थान के लगभग सभी स्थानो से और गुजरात के जामनगर से विभिन्न प्रजातियॉ लाकर लगायी गई है ताकि इनकी अनुकूलता एव

उपयोगिता सिद्ध की जा सके। विभिन्न तरह के खारे एव मीठे ग्वार पाठे यहाँ के विशेष आकर्षण है।

कई प्रजातियो के देशी क्रोटोन, लिली, मनी प्लान्ट, अग्रेजी क्रोटोन, फूलदार एवं छायादार पौधें उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त लुप्त होती जा रही गुग्गुल की विभिन्न प्रजातिया एक विशेष ब्लाक मे संरक्षित की जा रही है।

अर्जुन का वृक्ष जिसकी छाल हृदय रोगो मे राम बाण का काम करती है, उसे भी उद्यान मे सरक्षित किया गया है। इसी तरह मधुमेह यानि शुगर की बीमारी मे उपयोगी गुडमार बेल भी एक अन्य ब्लाक मे देखी जा सकती है।

इसके अलावा विश्व के विभिन्न मरुस्थलीय क्षेत्रो से लाये गये पौधे अन्य ब्लॉक मे उगाये गये है जिनमे मैक्सिको, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका प्रदेशो के पौधे प्रमुख है। भारतीय मरुस्थल की वनस्पतियों को प्राकृतिक रुप से एक विशेष ब्लॉक मे संरक्षित किया गया है। उपरोक्त वर्णित पौधों में से कई प्रजातियो की पौध यहॉ की पौधशाला में बेचने हेतु भी उपलब्ध है।

पर्यावरण सुधार तथा प्रबन्ध तकनीकियों का विकास

- भूमिगत जल के स्रोतों का पता लगाने के लिये पुरातन अपवाह तंत्र का अध्ययन किया गया। लुप्त सरस्वती नदी सहित पश्चिमी राजस्थान के ऐसे कई पुरातन अपवाह तत्रो का पता किया गया तथा उनका मानचित्रण किया गया। इसके साथ ही नागौर जिले के भूमिगत जल संसाधनों का विशेष अध्ययन किया गया तथा वर्तमान स्थिति तथा सभावित जल के नये क्षेत्रों का मूल्यांकन किया गया।
- अधिक कर्बोनेट युक्त (तेलिया) पानी से सिचित मृदाओ के जिप्सम द्वारा सुधार व प्रबन्ध के लिये बालोतरा, सिवाना, झवर तथा डोली के क्षेत्रों मे प्रयोग किये गये, जिसके काफी अच्छे व अनुकूल परिणाम मिले।
- सरदारसमन्द जलाशय के जलग्रहण क्षेत्र के जल सतुलन का विशेष अध्ययन किया गया इसके परिणामस्वरूप यहॉ के भू–प्रबन्ध और कृषि विकास मे सार्थक मदद मिली।
- भूमि के ह्रास तथा विभिन्न भूमि उपयोगों के उत्पादकता पर प्रभाव का भी अध्ययन किया गया। भूमि ह्रास के विभिन्न पहलुओ की तीव्रता को ऑकने में भी सफलता मिली है। इसी प्रकार सुदूर संवेदन तकनीक द्वारा भूमि उपयोग मे परिवर्तन का आकलन किया गया, जिससे एक समयावधि मे एक क्षेत्र के भू–उपयोग के बदलाव को तय किया गया।
- सन् 1985 के अकाल के दौरान भीषण ऑधियों द्वारा रेत के फैलाव का विशेष अध्ययन जोधपुर, बाडमेर, जैसलमेर, चुरू तथा बीकानेर जिलो मे किया

गया, जिससे रेत के फैलाव तथा अपरदन से मिट्टी के ह्रास को ऑकने मे सफलता मिली।

- जल तकनीकी मिशन के तहत टॉकों व नाडियों की डिजाइन मे सुधार किया गया तथा विभिन्न क्षेत्रो में टॉको व नाडियो का निर्माण किया गया। उपयोगिता के आधार पर विभिन्न क्षमता वाले टॉको की नयी डिजाइने तैयार की गयी, जो राज्य सरकार के विभिन्न विभाग विकास कार्य के लिये उपयेाग मे लाते है।
- कायलाना क्षेत्र मे प्रमुख पेड व झाडियों को सरक्षण प्रदान करके उनके पुर्नजीवन, बचाव, घनत्व तथा जैविक भार के विकास की दर को रेखाकित करने के लिये प्रबोधन किया गया परिणास्वरूप कई विलुप्त होती वनस्पतियो को अबाध गति से विकसित होता हुआ पाया गया।
- जोधपुर शहर के निकट बूजावड गॉव मे मृदा की नमी का संचय करने के उद्देश्य से वानस्पतिक अवरोधों का निर्माण कर विभिन्न पहलुओ का अध्ययन किया गया। इससे विभिन्न फसलों तथा घासों की पैदावार पर अनुकूल असर पडा तथा वानस्पतिक अवरोध बहुत उपयोगी सिद्ध हुए।
- बरना की चूने के पत्थर की खदानों तथा कवास की जिप्सम की खदानों द्वारा खराब हुई भूमि के पुनर्स्थापन, विकास तथा प्रबधन का कार्य पूरा किया गया। यह कार्य भारत व अमेरीका के संयुक्त कार्यक्रम के अन्तर्गत सम्पन्न किया गया।
- भौगोलिक सूचना प्रणाली के कार्य स्थल की स्थापना की गयी। इससे विभिन्न प्रकार के ऑकडे, मानचित्रों तथा सुदूर संवेदन ऑकडो का विभिन्न रूप मे विश्लेषण, प्रबोधन तथा प्रबधन किया गया।

मरूस्थलीकरण नियंत्रण

सामान्यतया, मरूस्थलीकरण से तात्पर्य मरूस्थल जैसी पारिस्थितिकी के विस्तार से लिया जाता है। मरूस्थलीकरण पर विचार करने के लिए वर्ष 1977 में नैरोबी तथा वर्ष 1992 मे रिओ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो का आयोजन किया गाय। काफी विचार–विमर्श के पश्चात् यह तय किया गया कि शुष्क, अर्द्ध शुष्क तथा शुष्क अर्द्ध आर्द्र क्षेत्रों मे जलवायु परिवर्तन तथा मानवीय प्रक्रियाओं के फलस्वरूप भूमि संसाधनो की उत्पादकता मे आने वाली कमी को मरूस्थलीकरण नाम दिया जाय।

मरूस्थलीकरण के कारण

- बढी हुई जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति के लिए कृषि अयोग्य भूमि, जैसे कि रेत के टिब्बे, कम गहरी, ककड वाली भूमि, ढलान वाले क्षेत्र तथा अत्यधिक कम वर्षा वाले क्षेत्र आदि जहॉ पर आसानी से खेती संभव नही है, वहॉ पर भी खेती

होने लगी। इससे वातीय एवं जलीय क्षरण तेजी से होने लगा तथा पर्यावरण सम्बधी समस्या बढने लगी।

- शुष्कता का प्रमुख कारण अपर्याप्त एवं असंतुलित वर्षा है। वाष्पन वाष्पोत्सर्जन की वार्षिक मात्रा 1700 से 2000 मि.मी. है, जो इस क्षेत्र की औसत वर्षा के अनुपात मे बहुत अधिक है।
- इन क्षेत्रे मे मृदा प्रायः रेतीली है। रेत के टिब्बे तथा अन्तर्टिब्बा क्षेत्र 30 6 प्रतिशत भू–भाग मे तथा रेतीले टिब्बेदार मैदान 34 6 प्रतिशत क्षेत्र में फले हुए है। लगभग 59 प्रतिशत क्षेत्र मे कठोर पटल वाली मृदाएँ मिलती हैं। इन रेतीली मृदाओ में 30 से 50 से.मी गहराई पर कठोर पटल मिलता है, जिसमें पौधो की जडे तथा जल प्रवेश नही कर सकते। प्राकृतिक लवणीय मृदाएँ, चट्टान तथा कंकड अथवा जिप्सम युक्त मृदाएँ 13 5 प्रतिशत क्षेत्र मे मिलती हैं। ये मृदाएँ सामान्यतया सघन खेती, सिचाई तथा मशीनीकरण द्वारा अधिक उपज बढाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। शुष्क क्षेत्र मे भू–जल 300–400 फीट गहरा मिलता है तथा वह भी 80 प्रतिशत से अधिक मामालो में लवणीय एवं क्षारीय है। वनस्पति छितरी हुई तथा कॉटेदार है। प्राकृतिक संसाधनो का क्षमता से अधिक उपयोग किया जाता है तो मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

"काजरी" द्वारा मरूस्थलीकरण नियत्रण हेतु वनीकरण तत्सम्बंधी पौधो, टीबा स्थिरीकरण तकनीक, वायव्य छिडकाव द्वारा वनीकरण आदि तकनीके विकसित करके प्रयोक्ता तक पहुँचाई गई है।

अकाल व सूखे की समस्या व समाधान

पश्चिमी राजस्थान के पिछले 100 वर्षो के आंकडों का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि औसतन प्रत्येक 2.5 वर्ष में एक वर्ष अकाल होता है पिछले तीन दशको मे 1972, 1974, 1979, 1987, 2000 व 2002 के अकाल प्रमुख रहे। "काजरी" द्वारा अकाल के समय वर्षा की प्रतिशत कमी, सूखे से निपटने के दीर्घावधि व तत्काल समाधान, कम वर्षा मे शीघ्र पकने वाली फसल किस्मो, घास की प्रजातियो, घास बैक की स्थापना व चारा संरक्षण व चारे को पौष्टिक बनाने की विधियों, चारा हेतु बहुउद्देश्यीय वृक्ष प्रजातियो आदि पर विविधतापूर्ण शोध किये गये है। "काजरी" द्वारा अकाल के समय विभिन्न प्रशिक्षण, बुलेटिन, मरू कृषि चयनिका पत्रिका का अकाल विशेषांक आदि जारी किये जिससे "काजरी" की सूखे से निपटने की तकनीकें कृषकों तक तत्काल पहुँची। "काजरी" ने पिछले पाच दशकों के अथक प्रयास से शुष्क क्षेत्रों हेतु कारगर तकनीके विकसित की है। इनको कार्यान्वित करके सूखा प्रबधन की दीर्घकालीन नीति बनाने की आवश्यकता है जो कि प्राकृतिक ससाधनो के अनुरूप हो और मनुष्य एव पशुओ की जरूरतो को असामान्य जलवायु में भी पूरी कर सके।

बाढ़ का अध्ययन

कहा जाता है *अति सर्वत्र वर्जयेत* जब अत्यल्प वर्षा वाले क्षेत्रो मे अत्यधिक घनघोर वर्षा होने लगे तो ऐसी रेगिस्तानी परिस्थितियों मे यह कहर बन कर आती है। ऐसा ही 2006 की मानसून की वर्षा के समय हुआ। वर्षा को तरसते रेगिस्तानी प्रदेश बाडमेर व जैसलमेर में लगातार 76 घंटे वाली वर्षा से बाढ के हालत उत्पन्न हो गये।

बाढ के विभिन्न वैज्ञानिक पहलुओं पर "काजरी" के वैज्ञानिको द्वारा अध्ययन किया गया। मौसम विज्ञानी, जल विज्ञानी, वनस्पति विज्ञानी, सुदूर संवेदन से जुड़े वैज्ञानिक, भू–गर्भ वैज्ञानिको ने बाढ के अनछुए पहलुओ का विभिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन किया। इसकी विस्तृत जानकारी हेतु "काजरी" द्वारा "बाढ विशेषाक" भी प्रकाशित किया गया।

17–24 अगस्त 2006 को हुंई वर्षा से जैसलमेर और बाड़मेर के सूखे बंजर पथरीले सग्रहण क्षेत्र मे लूनी नदी की सहायक निष्क्रिय सूखी नदी–रोहिली नदी मे तीव्र जल प्रवाह के कारण अन्य निष्क्रिय नाले भी पुनः बहने लगे और इनका तीव्र प्रवाह बाडमेर कवास, शिव, रामसर क्षेत्र मे बाढ का कारण बना। प्रवाह में बने जल बंध व एनीकट टूटते गये नदी की धार में जल प्रवाह को समाकर नहीं रख सकी, परिणामस्वरूप उन रेतीली धटियो मे प्रवाहो के मार्ग बदलने लगे और रेत की टीबो के पास नये प्रवाह बनने तथा अपने साथ मीटर दर मीटर रेत मिट्टी बहाने लगे। एक शताब्दी बाद रोहिली नदी ने अपने जल संग्रहण क्षेत्र को पुर्नस्थापित किया। जिप्सम खनन क्षेत्रो में पानी भर गया।

"काजरी" द्वारा किये बाढ के विस्तृत अध्ययन मे यह प्रकट हुआ कि निसदेह बाढ त्रासदी लाती है परन्तु यदि सिक्के का दूसरा पहलू देखे तो इस बाढ से जहॉ–जहॉ अवसाद जमा होते गए वहॉ कृषि सभावना बढी। पानी के साथ बहकर आये अवसादो मे माइका युक्त महीन मिट्टी जिसमे स्थानीय मृदा की सामान्य स्थिति से 8–15 गुणा अधिक नाइट्रोजन (880–3239 कि ग्रा / है) 3–4 गुणा अधिक फॉस्फोरस (20–55 कि ग्रा / है) तथा 2–9 गुणा अधिक पौटेशियम (270– 1449 कि ग्रा / है) युक्त है, अवसाद रूप मे आयी मिट्टी भूमि की जल धारण क्षमता एवं उर्वरता में वृद्धि कर सकती है। इस बाढ से विशाल रेतीले टीबे वाले भूखंडों को हरा–भरा करने एव उससे ग्रामीणों की आजीविका स्तर में सुधार करने का एक अस्थायी अवसर मिला।

फसल उत्पादन

राजस्थान का मरू क्षेत्र फसल उत्पादन के लिहाज से अत्यन्त अस्थिर रहा है। मरू फसलो को विपरीत परिस्थितियो में बीजों के अंकुरण से लेकर पकने तक जूझना पडता है। बुवाई पश्चात् भूमि मे नमी का त्वरित ह्रास व ऊपरी भूमि की कठोर पपडी के कारण कम अंकुरण यहाँ पर सामान्य प्रक्रिया है। इसके कारण छोटे दानो वाली फसले बाजरा, ज्वार, तिल इत्यादि मे प्रति इकाई पौधे कम हो जाने के कारण उपज मे काफी गिरावट पायी जाती है। इसके साथ–साथ फसलो के पकते समय तेज वायु, अधिक तापक्रम तथा भूमि में कम होती नमी के कारण बीज छोटे, सिकुड़े व अविकसित रहने के कारण, फसल उत्पादन और भी कम होता है। कम नत्रजन तत्वों का भूमि में पाया जाना व अधिक तापक्रम के कारण इन तत्वो का ह्रास होना भी कुछ ऐसी परिस्थितियॉ है, जो मरू कृषि की दयनीय स्थिति दर्शाती है।

भूमि उपयोग

जलवायु, मिट्टी, जल संसाधन तथा भू–आकृतियों की विभिन्नता और उनके प्रभाव के कारण भूमि उपयोग मे बहुत विभिन्नताएँ मिलती है। उत्तरी पश्चिमी शुष्क क्षेत्र के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का करीब 59 2 प्रशित कृषि कार्य हेतु प्रयुक्त किया जाता है, जबकि 3.0 प्रतिशत क्षेत्र वन, 3 62 प्रतिशत गोचर भूमि, 3.7 प्रतिशत भाग जलाशयो के अतर्गत आता है। शेष 30.5 प्रतिशत क्षेत्र मे विभिन्न प्रकार की बजर क्षेत्र (वेस्ट लैंड) पायी जाती है। द्विफसली क्षेत्रफल करीब 10.0 प्रतिशत है। पश्चिमी राजस्थान के समस्त क्षेत्रफल का करीब 62.94 प्रतिशत भाग कृषि के अन्तर्गत है। स्थायी चारागाह 4.56 प्रतिशत, वन 1.32 प्रतिशत, बसावट व जलाशय 2.85 प्रतिशत क्षेत्र घेरते है। रेतीले टीबे अधिकतर भाग को ढके हुए है। इसके अतिरिक्त पथरीली, चट्टानी तथा क्षारीय भूमि भी है।

वन अधिकतर अरावली पहाड़ियों पर ही पाये जाते हैं। गोचर भूमि पश्चिमी भाग मे अधिक है। कुल कृषि भूमि के करीब 89 प्रतिशत भाग मे एक फसलीय बारानी खेती होती है। वार्षिक फसल क्षेत्रफल वर्षा पर निर्भर करता है। इस भाग मे शुद्ध सिंचित क्षेत्र सम्पूर्ण क्षेत्रफल का 7 79 प्रतिशत तथा कुल कृषि भूमि का 10 42 प्रतिशत है। बाजरा, ग्वार, मूंग, मोठ, तिल प्रमुख खरीफ फसल है। जबकि रबी में सरसों, गेहूँ, चना आदि होता है। इसके अतिरिक्त कपास, मिर्च, जौ, जीरा व ईसबगोल की पैदावार भी होती है।

गुजरात के शुष्क क्षेत्र में क्षारीय भूमि, रन तथा पथरीली व चट्टानी भूमि का भाग अधिक है। इसलिये बजर भूमि का प्रतिशत कच्छ जिले मे 76 22 तथा जामनगर में 19. 58 प्रतिशत है। सिचित क्षेत्र करीब 11 प्रतिशत है। ग्वार, बाजरा, मूंगफली व कपास

प्रमुख फसले है। अधिकतर कृषि क्षेत्र बारानी है पानी द्वारा कटाव, क्षारीयता तथा खार व भूमिगत जल का अभाव प्रमुख समस्याएँ है।

समन्वित कृषि प्रबन्धन

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान सस्थान (काजरी) जोधपुर में समन्वित कृषि परियोजना वर्ष 1991–92 से चल रही है, इस परियोजना के मूल उद्देश्य थार अंचल की वर्षा आधारित कृषि भूमि में टिकाऊ खेती के लिये विभिन्न प्रारूपों पर अनुसधान कार्य करना तथा कृषि पद्धतियो के उचित समन्वयन से विकसित फार्म मॉडल्स की ओर किसानो को उन्मुख करना है।

पश्चिमी राजस्थान के सूखे प्रभावित क्षेत्रो मे कृषि व्यवसाय एक चुनौती है। अकाल की भारी संभावना (35–70 प्रतिशत) वर्षा के आगमन का समय, मात्रा आदि मे भारी अनिश्चितता इस क्षेत्र की नियति है। यहाँ के किसानो के सामाजिक व आर्थिक ढॉचे मे भी विविधता है तथा किसान या तो गांव में स्थाई निवास बना कर वर्षा काल मे खरीफ की फसले ले कर खेत को साल के शेष भाग मे आरक्षित छोड देते है या फिर अन्य काश्तकार ढाणी बना कर पूरे वर्ष अपने खेत की देख–भाल व रखवाली करते है। अतः फार्म मॉडल्स भी परिस्थितिजन्य विविधताओ के अनुरूप ही टिकाऊ खेती के लिये उपयुक्त हो सकते हैं। "काजरी" में निम्न लिखित फार्म मॉडल्स को विकसित किया गया है :

- **फसल विविधीकरण:** यह मॉडल वर्षाकाल मे कृषि करने वाले किसानों के लिये उपयोगी हो सकता है इसमे फसल विविधीकरण के लिये कुल खेत का 30 प्रतिशत भाग बाजरे मे, 40 प्रतिशत भाग दलहनो मे, 20 प्रतिशत भाग ग्वार मे तथा बचे हुये 10 प्रतिशत भाग में तिलहन फसलों की खेती पर जोर दिया जाता है। मानसून वर्षा के 15–20 जुलाई तक ही यह मॉडल कार्य कर सकता है। अधिक विलम्ब पर फसल विविधीकरण मे दाले, चारापयोगी फसलें (चवला, बाजरा) व तिलहन फसलो की ही सम्भावना अधिक रहती है। ऐसे किसानो को फसल विविधीकरण के साथ–साथ फसल चक्र, मिलवां खेती, उन्नत किस्मो का बीज (जल्दी व मध्य काल में पकने वाली), उन्नत सस्य क्रियाओं को भी महत्व देना चाहिये। उपरोक्त मॉडल से किसान अपने 40–50 बीघा खेत पर 2–3 गाय व 8–10 भेड व बकरी को वर्ष भर पोषण कर सकते है तथा औसतन रू. 70,000 से 80,000 प्रति वर्ष आय अर्जित कर सकते हैं।
- **समन्वित कृषि मॉडल :** जो किसान ढाणी बना कर अपने खेत पर ही रह रहे है उनके लिये कृषि विविधीकरण अपनाकर अधिक उत्पादकता, आय एवं सतत् कृषि विकास की प्रबल सभावनाएँ हैं। इन कृषि मॉडल्स के पूर्ण विकास मे 5–7 वर्ष का समय अवश्य लग जाता है किन्तु उसके बाद किसान की आय, भूमि व जल उत्पादक क्षमता मे निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इन मॉडल्स को अपनाकर

मरू प्रदेश का किसान टिकाऊ खेती करके अपने व अपने परिवार के समग्र विकास के पथ पर अग्रसर हो सकते है। इस मॉडल को अपनी परिस्थितियों के अनुसार फेर बदल कर किसान 5–7 गायो, 15–20 भेड व बकरियो का वर्ष भर पालन पोषण कर सकता है तथा विभिन्न कृषि उत्पादो जैसे चारा, लूग व पाला, पशु आहार (ग्वार), अनाज, दाले, तिलहन, जलाऊ लकडी, गोबर व मींगणी की खाद, बेर आदि का भी उत्पादन कर सकता है। इस प्रकार वह अपने व अपने परिवार के लिये वर्ष भर का रोजगार प्राप्त कर 2 से 2.5 लाख रूपये प्रतिवर्ष की आमदनी प्राप्त कर सकता है। यह खेती अकाल व सूखे की स्थिति से भी कम प्रभावित होती है तथा प्राकृतिक संसाधनों की क्षमता में वृद्धि कर मारवाड के असिंचित क्षेत्रो में टिकाऊ खेती का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

काजरी द्वारा विकसित समन्वित कृषि माडल इस प्रकार है –

कृषि पद्धति	क्षेत्रफल (है.)	कृषि पद्धति	क्षेत्रफल (है.)
फसल पद्धति	1 00	बेर आधारित चरागाह	1 75
खेजडी आधारित कृषि वानिकी	0 75	अजन आधारित कृषि वानिकी	0.75
बेर आधारित कृषि उद्यानिकी	0 75	इजरायली बबूल आधारित कृषि वानिकी	0 75
मोपेन आधारित चरागाह	0 75	धामण घास आधारित कृषि	0 75
		कुल क्षेत्रफल (है.)	**7.00**

शुष्क क्षेत्र कृषि

उपयुक्त फसलें और किस्में

शुष्क क्षेत्र की फसलें और उनकी किस्में जो कि यहाँ की वर्षा वितरण पद्धति से मेल खाए और वर्षा के पानी और मृदा नमी का अधिकाधिक प्रयोग हो सके ऐसी किस्मों का चयन किया गया। (बाजरा की डब्ल्यू सी.सी.–75, मूंग की एस.–8, मोंठ की जे.एम एम.–259, टी–18, टी–23, राजमा की एफ एस.–68, चारोडी–1, तिल की टी–13, अरण्ड की अरूणा गुज–1, ग्वार की दुर्गापुरा सेफ्ड एफ.एस.–277, दुर्गाजय–2470 / 12) सूक्ष्म धान में कंगनी (*सेटारिआ इटालिका*) और चीना (*पेनीकम मेलिएसीयम*) जिससे बहुत अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है परिचित की गई। "काजरी" द्वारा ग्वार की *मारू ग्वार,* मोंठ की *मारू मोठ,* कुल्थी की *मारू कुल्थी* किस्में निस्तारित की गयी हैं। बाजरा और मूँग की कृषीय तकनीको को उन्नत किया गया। बाजरा की इक्रीसेट के सहयोग से विकसित की गई संमिश्र किस्म सी.जेड–आई सी.–923 (एम पी.–258) को

राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, दिल्ली, उत्तरप्रदेश एव मध्यप्रदेश में खेती हेतु निस्तारित किया गया।

संस्थान द्वारा विकसित प्रमुख फसल किस्में इस प्रकार है –

बाजरा – सी जेड पी –9802, सी.जेड पी आई.सी –923
मोठ – मरू मोठ, काजरी मोठ–1, काजरी मोठ–2, काजरी मोठ–3
ग्वार – मरू ग्वार
कुल्थी – मरू कुल्थी–1
लोबिया – मरू चवला (सी ए जेड –10)

शुष्क भूमि हेतु बुवाई पद्धति

अरण्ड और ग्वार के साथ बहुवर्षीय घास जैसे अंजन (*सेंकरस सिलियरिस*) की बुवाई से फसल उत्पादन मे स्थिरता होती है अन्तर्बुवाई जैसे अंजन (*सेंकरस सिलियरिस*) + ग्वार; *सी. सीलियरिस* + मूंग; दो तीन पक्ति बाजरा + एरंड, राजमा (एच एफ सी – 42–1) और एरंड + मोठ की बुवाई से उत्पादन में स्थिरता आती है तथा साथ ही यह भूमि प्रयोग और सुधार हेतु भी प्रभावकारी पाया गया है।

घास	किस्म	पकने की अवधि (दिन)	बीज उत्पाद क्वि. है	निस्तारण वर्ष	टिप्पणी
ग्वार	मरू ग्वार	97–100	10–12	1986	बीजो मे 32 प्रतिशत गम और 31 प्रतिशत प्रोटीन
मोठ	मरू मोठ	80–85	5–6	1988	सूखा सहनीय और यलो मोजिक वायरस प्रतिरोधी
	काजरी मोठ–1	70–72	5–6	1999	
कुल्थी	मरू कुल्थी	90–115	4–6	1989	सूखा सहनीय
बाजरा	सी जेड.–आई सी –923	72–80	20–22	1996	अरगट डाउनीमिल्ड्यू प्रतिरोधी
	सी जेड पी	72–75	13–14	2002	शीघ्र पकने, अधिक उपज वाली रोगरोधी, शुष्क क्षेत्रो हेतु उपयोगी किस्म

बुवाई और सिंचाई की नई तकनीक

"काजरी" द्वारा बुवाई और सिचाई की नई तकनीक सर्दी की दो फसलो के लिए जैसे गेहूँ और राया (*ब्रासिका जुन्सिया*) की उपयुक्त आकार की भूमि में बुवाई करना: 3 पक्तियॉ रायां की (1.2 चौडी पक्ति में) तथा 2 मीटर चौड़ी गेहूँ की पंक्ति में बुवाई विकसित की हैं। यह एक आदर्श फसल जोडा जिसमे एक सिंचाई की फसल (गेंहूँ) होगी दूसरी असिंचित अर्न्तबुवाई की फसल रायां होगी ताकि मृदा की नमी सिचित गेहूँ की जडों से असिंचित रायां की जडो तक जाएगी व अंततः राया की फसल को

लाभान्वित करेगी। सस्थान में बूँद–बूँद सिचाई एव फव्वारा सिचाई पद्धतियों पर भी बहुत कार्य किया गया। राजस्थान के शुष्क क्षेत्र के बहुत बडे भाग पर इन पद्धतियो को किसानो द्वारा अपनाया गया है।

आनुवांशिकी सुधार

दलहनी, तिलहनी व मोटे धान्य फसलों का क्रमशः 92 प्रतिशत, 86 प्रतिशत व 75 प्रतिशत उत्पादन शुष्क क्षेत्रों से प्राप्त होता है। अत राष्ट्रीय फसल उत्पादन मे वृद्धि के लिए इन फसलों का आनुवांशिक सुधार आवश्यक है। फसल सुधार कार्यक्रम से मरू भूमि मे भी लगभग 15 से 20 प्रतिशत उपज वृद्धि की जा सकती है। आनुवाशिक सुधार अनुसधान निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान मे रखते हुए किए गये।

- जल्दी पकने वाली किस्मो का विकास -- जो वर्षा ऋतु मे ही पक कर तैयार हो जाये।
- अधिक उत्पादन व शुष्कता के प्रति सहनशीलता की प्रबल क्षमता का विकास।
- मुख्य बीमारियो के प्रति अवरोधक क्षमता।
- पौधों के आकार व स्वरूप में सुधार।
- मिश्रित व अन्तर फसल पद्धति के लिए उपयुक्त किस्मों का विकास।

"काजरी" द्वारा विकसित बाजरा की उन्नत किस्म

राजस्थान मे बाजरा की खेती लगभग 42.6 लाख हैक्टेयर क्षेत्र मे की जाती है, जिसका लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्र (35.0 लाख हैक्टेयर) पश्चिमी राजस्थान में केन्द्रित है किन्तु शुष्क क्षेत्र की वर्तमान उत्पादकता (161 कि ग्रा. प्रति हैक्टेयर) भारत की औसत उत्पादकता (527 कि ग्रा. प्रति हैक्टेयर) से काफी कम है। बाजरा में किस्म सुधार का कार्य अखिल भारतीय बाजरा सुधार समन्वित योजना के तहत् 1968–69 मे शुरू किया गया था। इसके अन्तर्गत जननद्रव्य का सकलन, किस्मों का विकास, अत.प्रजनन व नर नपुंसक लाइनो के चयन इत्यादि पर विशेष जोर दिया गया है। "काजरी" व इक्रीसेट हैदराबाद के सम्मिलित प्रयासो द्वारा विकसित किस्म सी.जेड आई सी.–923, जो 1996 में कृषि मत्रालय द्वारा सूचित की गई, अच्छी उपज (20–22 क्विं प्रति हैक्टेयर) देने की क्षमता रखती है तथा मृदु रोमिल व कंडवा रोधक भी है।

सी.जेड.पी. 9802

सी.जेड.पी 9802 बाजरा की नई किस्म को अधिक अनाज एवं चारा उत्पादन के कारण शुष्क क्षेत्रों के लिए विशेष रुप से जारी किया है यह किस्म शुष्क क्षेत्रों के लिए पहले से अनुमोदित किस्मों (पूसा 266 व आई सी.टी.पी. 8203) से 14 से 23 प्रतिशत अधिक उत्पादन देती है, लगभग 70 दिन मे पकती है। इस किस्म के बीज को संकर बाजरा की तरह हर साल नया खरीदने की आवश्यकता नहीं है। किसान इसकी फसल

काजरी द्वारा निस्तारित बाजरा की किस्म सी.जेड.पी. 9802

नकदी फसल मेंहदी की उन्नत एवं लाभकारी खेती

मे से ही अगली 2–3 बुवाई के लिए बीज रख सकते हैं। अत यह किस्म शुष्क क्षेत्र के लिए अत्यन्त उपयोगी है क्योकि इसमे खाद्यान्न एव चारा दोनो के उत्पादन की अच्छी क्षमता है।

मरू दलहनों की उन्नत किस्में

ग्वार

ग्वार शुष्क क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है क्योकि भारत मे उत्पादित ग्वार का लगभग 70 प्रतिशत क्षेत्र (21 8 लाख हैक्टेयर) राजस्थान मे है। ग्वार की फसल दूसरी दलहनो के मुकाबले मे पकने मे अधिक समय लेती है तथा इसकी वृद्धि धीरे–धीरे होती है। किस्म सुधार कार्यक्रम के अतर्गत कुछ अच्छी किस्मो का चयन किया गया है। प्रजनन द्वारा भी उन्नत किस्मे विकसित की गई है तथा जननद्रव्य को एकत्रित करके उसका मूल्याकन किया गया है।

ग्वार एक बहुउद्देशीय सूखा सहन करने वाली, गहरी जडो वाली, वार्षिक दलहनी फसल है। ग्वार की फसल किस्मो के अनुसार 90–115 दिनो मे पक जाती है। यह फसल दाना, चारा व हरी सब्जी के लिए जानी जाती है। "काजरी" द्वारा विकसित मरू ग्वार किस्म की उत्पादकता 10–12 क्विटल प्रति हैक्टेयर तक है, जो 97–100 दिन मे पकती है। यह किस्म सूखा सहन क्षमता युक्त है तथा बेक्टीरियल ब्लाइट प्रतिरोधी होने के साथ–साथ देरी से बुवाई के लिये भी उपयुक्त है।

फसल संरक्षण

- ग्वार की फसल को समय पर बुवाई (जुलाई का दूसरा सप्ताह) करके, चूर्णिल आसिता से बचाया जा सकता है।
- ग्वार की जड व तना गलन बीमारी के नियत्रण के लिए भूमि को 2 5 टन सरसो कम्पोस्ट + 0 5 टन सरसो की खल प्रति हैक्टेयर दर से उपचार बहुत उपयोगी उपाय है।
- जीवाणु अगमारी तथा चूर्णिल आसिता रोगो को साथ–साथ नियत्रण के लिए डाईथेन एम–45 तथा डाईथेनजेड–78 का छिडकाव सर्वोत्तम रहता है।
- अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग के नियंत्रण के लिए 15 दिनो के अन्तराल पर डाईथेन जैड–78 का छिडकाव सबसे उपयुक्त पाया गया है।
- जीवाणुज अगमारी के नियत्रण के लिए 150 पी पी एम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन से बीज उपचार तथा खडी फसल मे 100 पी पी एम से 30–40 दिनो के अन्तराल के बाद दो छिडकाव करने की अनुशषा की गयी है।

मोंठ

शुष्क प्रदेशो में प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थितियों के होते हुए भी इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन के स्वप्न को काफी हद तक, मोंठ की फसल उगाकर पूरा किया जा सकता है। मोठ अपने आनुवाशिक गुणों, जिनमें शुष्कता के प्रति प्रतिरोधक क्षमता, कम (100 से 250 मि मि.) एव अनियमित (30 से 40 दिन) वर्षा एंव तेज गर्मी (35° से.मी.) मे भी अच्छा उत्पादन देने की क्षमता के लिए जानी जाती है। मोंठ के पौधे की गहरी (>100 से.मी) व तेजी से बढने वाली जडें भूमि की निचली सतह से जल का अवशोषण करके प्रतिकूल परिस्थितियो में भी पौधों को साधे रखती है। पोषक तत्वों की कमी वाली, ऊची–नीची, रेतीली भूमियो मे भी कम लागत एव न्यूनतम कृषि क्रियाओं के साथ अधिक उत्पादन देने वाली फसलों मे, मोठ एक सर्वोत्तम दलहनी फसल है।

मोठ सुधार के कार्यक्रम मे जल्दी पकने व सीधी बढने वाली, जल्दी पकने व कम फैलावदार किस्मों को चयनित किया गया है। मोंठ की नई किस्में लगभग 60 से 65 दिनो मे पक जाती हैं, सीधी बढती है तथा इनकी उपज की क्षमता भी लगभग दुगुनी है। 1989 में केन्द्रीय किस्म चयन समिति द्वारा संस्तुत किस्म मरू मोठ–1, ज्वाला किस्म के मुकाबले लगभग 21 4 प्रतिशत अधिक उत्पादन देने की क्षमता रखती है। मोंठ की अन्य किस्मे जो रेगिस्तानी क्षेत्र के लिये उपयुक्त पायी गई, निम्न है:

- कम फैला दान व मध्यम पकाव वाली : ज्वाला जड़िया आदि
- मध्यम व देरी से पकने वाली : आई.पी.एम ओ.–800, टी–18, सी.जेड.एम.–78 आदि
- जल्दी पकने व सीधी बढने वाली: आर एम.ओ.–40, आर.एम ओ.–257, सी जेड. एम –99, सी जेड.एम.–15

"काजरी" द्वारा विकसित मोठ की विभिन्न किस्मों एव उनकी विशेषाताएँ निम्न सारणी मे प्रस्तुत हैं–

किस्म	**मरू मोंठ**
उत्पादकता	500–550 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि	80–85 दिन
विशेषताएँ	मध्यम फैलाव, पीली चितेरी विषाणु रोग सहने मे सक्षम, सूखा सहने की क्षमता, अंतराशस्य के लिए उपयुक्त।
किस्म	**काजरी मोंठ 1**
उत्पादकता	400–500 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि	70–75 दिन
विशेषताएँ	मध्यम फैलाव, सरक्षित जल वाली भूमियो के लिए उपयुक्त, दाने व चारे दोनो के लिए उपयुक्त, अच्छे प्रबन्धन पर अधिक उपज, प्रोटीन 25 प्रतिशत।

किस्म	काजरी मोंठ 2
उत्पादकता	700–800 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि	65–67 दिन

किस्म	काजरी मोंठ 3
विशेषताएँ	कम व अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो के लिए उपयुक्त, मध्यम फैलाव वाली, सूखा सहन करने की क्षमता, मध्यम भूमि उर्वरता व मध्यम प्रबंधन मे भी अधिक उपज देती है।
उत्पादकता	800–900 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर
पकने की अवधि	60–62 दिन
विशेषताएँ	सूखा एव येलो मोजेक वायरस से बचने की क्षमता, कम फैलाव।

अधिक उत्पादन के लिए मोठ की बुवाई से पहले खेत मे 20 से 25 कि.ग्रा जिक सल्फेट प्रति हैक्टेयर अवश्य मिलाना चाहिए। भण्डारण के दौरान ब्रुकिडस या बीटिल्स के प्रकोप से दानो को बचाने के लिए बीजों को अच्छी तरह सुखा कर लगभग 8 मिलीलीटर/किलोग्राम की दर से तिल या मूंगफली के तेल से उपचारित करके भण्डारण करे।

कुल्थी

संस्थान ने कुल्थी की भी एक किस्म कुल्थी–1 विकसित की है जो 90–115 दिन मे पकती है। इसमे सूखा सहन की क्षमता है तथा इसमे कीड़ों एव बीमारियो का प्रकोप कम होता है। यह किस्म देरी से बुवाई के लिए भी उपयुक्त है। इसकी उत्पादकता 4–6 क्विटल प्रति हैक्टेयर रहती है।

मूंग

यह फसल कम व देरी से होने वाली वर्षा की स्थिति में बहुत उपयुक्त पायी गई है। राजस्थान में मूंग की खेती (4.15 लाख हैक्टेयर) का लगभग 76 प्रतिशत क्षेत्रफल रेगिस्तानी भूमि मे निहित होने के कारण यह अग्रणी दलहन मानी जाती है। यह अन्तर्फसल पद्धति के लिए भी उपयुक्त है। "काजरी" मे वर्षा पर निर्भर मूंग की विभिन्न किस्मो का मूल्याकन किया गया है। इन किस्मों में के.–851 सबसे उपयुक्त पायी गई, जो 10 से 12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देने की क्षमता के साथ ग्रीष्म ऋतु के लिए भी उपयुकत रहती है। एस–8 मुख्य रूप से सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा बीमारी के प्रति रोधकता रखती है। आर एस.–4 अधिकतर बीमारियों पत्तीशिरा मोजेक, सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा के प्रति विशेष रूप से रोधक पायी गई है। एस.–9 देरी से बोने की स्थिति के लिय उपयुक्त रहती है।

चंवला

चवला की राजस्थान मे कुल खेती (897 हजार हैक्टेयर) का लगभग 7237 प्रतिशत क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान के 12 जिलों मे केन्द्रित है। यह फसल लगभग 60–65 दिनो मे पकने के कारण शुष्क अवस्था मे अच्छी प्रकार से उगाई जा सकती हे। चंवला मे मुख्य रूप से कम फैलावदार व सीधी वृद्धि वाली किस्मो की आवश्यकता है। चवला के जननद्रव्यो को एकत्रित करके वर्षा ऋतु मे मूल्यांकन किया गया। उत्परिवर्तन विधि द्वारा भी किस्मो को सुधारने का कार्य "काजरी" मे किया गया है। मूल्याकन के अन्तर्गत इसकी चरोडी, एफ एस–68 तथा आर सी–19 किस्में उपयुक्त पायी गयी।

- चरोडी किस्म 60–65 दिनो मे पकने वाली किस्म है जो लगभग 8 से 9 क्वि. प्रति हैक्टेयर पैदावार देने की क्षमता रखती है। बाजरा के साथ अन्तर फसल पद्धति के लिए यह किस्म अनुकूल पायी गई। चरोडी किस्म के बादामी रग के बीजो को सफेद करने के बारे मे भी अनुसधान चल रहे है। कुछ सफेद उत्परिवर्ती विकसित किये गये हैं, जिनका मूल्याकन अन्तिम दौर मे है।
- एफ एस–68 किस्म फलियो के झडान तथा पत्तीशिरा मोजेक के प्रति सहनशील पायी गई।
- आर सी–19 मे लवणता के प्रति कुछ सहनशीलता की क्षमता होने के साथ सारी फलियॉ एक साथ पकती है। यह अच्छी उपज (20 से 22 क्विं/है) देने की क्षमता रखती है।

सोनामुखी के तने के अर्क का बाजरे का उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रयोग

अर्क बनाने के लिए करीब 200 कि.ग्रा सोनामुखी के तनों को 150 लि पानी में 3–4 दिन के लिए भिगो दे। 3 दिन के पश्चात् तनो को निकाल कर इस अर्क का बाजरे पर छिडकाव कर दे। करीब 100 कि.ग्रा. सोनामुखी तने से बना अर्क एक हैक्टेयर क्षेत्र मे छिडकाव के लिए काफी होता है। अध्ययन से पता चलता है कि इससे बाजरे की उपज करीब 20 प्रतिशत तक बढ जाती है।

बारानी खेती के लिए उपयुक्त फसल उत्पादन प्रणालियाँ

एक ही खेत मे लगातार बाजरा की खेती करने से उत्पादन कम होता है और भूमि की उर्वरा शक्ति मे भी कमी आती है। "काजरी" के शोध बताते है कि सकर बाजरे और ग्वार का फसल चक्र अपनाने पर उत्पादन मे 11 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। हर दूसरे वर्ष प्रति हैक्टेयर 26 किलो फॉस्फेट का उपयोग करने पर उत्पादन मे 36 प्रतिशत की वृद्धि होती है। फसल चक्र में बाजरा के बाद अन्य दूसरी दलहनी फसल जैसे लोविया, मूग व मोठ भी लिये जा सकते है। जिस साल बारिश अच्छी होती है (500 मि.मी. से ज्यादा) व देर से खत्म होती है, तो ऐसी हालत मे यहॉ

पर दो फसल लेना भी सभव पाया गया है। बाजरा के बाद सरसों या चना, मृदा मे सरक्षित नमी पर उगाया जा सकता है।

फसल प्रणाली मे बाजरा के अलावा अरडी, ग्वार, मूग, मोठ तथा बहुवर्षीय अजन घास आदि को शामिल करने से पैदावार में अस्थिरता कम की जा सकती है। अतरा शस्य प्रणालियो जैसे अजन व ग्वार, अजन व मूग, बाजरा व मूग, बाजरा व ग्वार, अरंडी व मोठ चारा आदि न केवल उत्पादन को स्थिरता प्रदान करते है, अपितु ये प्रणालियॉ भूमि व नमी का बेहतर उपयोग करती हैं और ज्यादा फायदेमद पायी गई है। अतरा शस्य प्रणाली मे मुख्य फसल व अतरा फसल को उगाने की कई विधियॉ हो सकती है जैसे एक–एक पक्ति मे, मुख्य फसल की दो पक्तियॉ के बीच अंतरा फसल की एक या दो पक्तियॉ या दोनो फसलो को 4–4 पक्तियों की पट्टियों में बोना आदि। इस प्रणाली मे मुख्य फसल की पैदावार पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता है और सहायक फसल की अतिरिक्त उपज प्राप्त हो जाती है।

जुताई

जुताई की उचित सख्या व विधि मृदा संरचना पर निर्भर करती है। बलुई मिट्टी मे भारी मिट्टी की अपेक्षा कम जुताई पर्याप्त रहती है। जिन खेतो में मोथा (*साइपेरस रोटंडस*) का प्रकोप हो, वहॉ मिट्टी पलट हल से जुताई काफी प्रभावशाली पायी गई है। इस क्षेत्र के लिए 2–3 साल मे एक बार गहरी जुताई करना भी नमी सरक्षण, कीट–व्याधि नियत्रण व अधिक पैदावार के लिए लाभदायक रहता है।

जैव उर्वरकों का प्रयोग

वर्षा की अनिश्चितता के कारण किसान आमतौर पर रासायनिक उर्वरको का प्रयोग नही करते, जबकि यहॉ की मृदाओं में नत्रजन की विशेष कमी है। ऐसी स्थिति में नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले जैव उर्वरको का प्रयोग फायदेमद पाया गया है। बाजरा मे *एजोस्पाइरिलस ब्रेसीलेस* का प्रयोग करके 394 प्रतिशत तक अधिक उपज प्राप्त की गई। एक अन्य प्रयोग में यह पाया गया कि अकेले एजोस्पाइरीलम के टीके का प्रयोग करके 13 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर नाइट्रोजन उर्वरक के प्रयोग जितनी पैदावार प्राप्त की जा सकती है। पर जब रासायनिक उर्वरको का भी साथ–साथ प्रयोग किया जाता है, तो एजोस्पाइरीलम से कोई अतिरिक्त लाभ नही मिलता है। इसलिए इसका प्रयोग तभी करना चाहिए जब नाइट्रोजन वाली रासायनिक खाद किसान नही देना चाहे।

दलहनी फसलो मे राइजोबियम का टीका काफी लाभदायक पाया गया है। यह देखा गया कि मूग मे राइजोबियम का टीका लगाने से पैदावार में 51 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। उपज मे इतनी वृद्धि प्रति हैक्टेयर 20 कि.ग्रा नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा फॉस्फोरस अथवा दोनो को साथ–साथ मिलाकर देने पर भी नही प्राप्त हुई।

उर्वरकों का प्रयोग

बाजरा की नत्रजन उर्वरक के प्रति प्रतिक्रिया कई बातों पर निर्भर करती है, जैसे किस्म, औसत वर्षा आदि। देशी किस्मो के लिए 23 कि ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर से लगाकर उन्नत किस्मो के लिए 85 कि ग्रा. तक की मात्रा उचित पायी गई।

नत्रजन उर्वरको का प्रभाव न केवल मात्रा, अपितु उर्वरक देने का समय व विधि पर भी निर्भर करता है। यह पाया गया कि 20 कि ग्रा. नत्रजन बाजरा की बुवाई के समय व 20 कि.ग्रा बुवाई के 3–4 सप्ताह बाद देने से उतनी ही उपज मिलती है, जितनी 80 कि.ग्रा. नत्रजन बुवाई के समय देने से मिलती है।

अतरा शस्य प्रणाली में भी नत्रजन के प्रयोग पर परीक्षण किए गए है। बाजरा–मूंग व बाजरा–ग्वार प्रणाली मे नत्रजन की कम मात्रा (30 कि.ग्रा प्रति हैक्टेयर) अगर बाजरा को दी जाए तो दोनो ही फसलो की अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

दो या चार साल के फसल चक्रो मे, जहॉ बाजरा व दलहन फ़सल को बदल कर उगाते है, दोनो फसलो मे फॉस्फोरस देने की आवश्यकता नही होती। दो साल में एक बार दलहन की फसल को 26 कि ग्रा. फॉस्फोरस देना ज्यादा फायदेमद पाया गया, बजाए, बाजरा की फसल में फॉस्फोरस देने के, इसी तरह मूग–बाजरा चक्र मे मूंग की फसल को फॉस्फोरस व बाजरा की फसल को नत्रजन धारी उर्वरक देने से अधिक पैदावर प्राप्त होती है।

वर्षों के अनुसधान के बाद अब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी है कि खरीफ मे बाजरा मे नत्रजन उर्वरको का प्रयोग करके उपज मे अस्थिरता को कम किया जा सकता है। उर्वरको के साथ–साथ देशी खाद देने से ना केवल फसल की उपज मे स्थिरता आती है, बल्कि इसकी नत्रजन का उपयोग करने की क्षमता भी बढती है।

बूँद–बूँद (ड्रिप) सिंचाई विधि

यह एक आधुनिक विधि है, जिसमे पौधों की जड के पास उतना ही पानी दिया जाता है, जितना फसल के लिए प्रतिदिन जरूरी होता है। "काजरी" में इस विधि से सिचाई करके फसलो की उपज बढाने के कई सफल प्रयोग किए गए है। बूँद–बूँद विधि से सिचाई करने पर मक्का तथा सब्जी वाली फसलों का उत्पादन कई गुणा तक बढाया जा सकता है। ड्रिप विधि से सिचाई करने से पानी की मात्रा मे काफी किफायत की जा सकती है। आलू की फसल में नाली–डोली विधि से सिचाई करने पर 366 मि मी की आवश्यकता हुई, जबकि ड्रिप विधि से केवल 183 मि मी. पानी देकर उतना ही उत्पादन प्राप्त हुआ। इस विधि से उर्वरक भी सिचाई के पानी के साथ–साथ पौधों की जडो तक पहुँचाए जा सकते हैं, जिससे उर्वरको की मात्रा काफी कम की जा सकती है।

समन्वित नाशी जीव प्रबन्धन

कीट प्रबन्धन

फसलो घासो और उद्यानिकी फसलो को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया और उनके प्रबध के उपाय विभिन्न फसलो हेतु सुझावित किए गए। वनीकरण हेतु लगाए जाने वाले पेडो को नष्ट करने वाले कीट (*ओडोन्टोरमेस बून्सी*) दीमक और गेहुँ की फसल में लगने वाले (माइक्रोटरमेस टेन्यूगन्थस) के नियत्रण के लिए प्रभावकारी उपाय विकसित किए गए।

बाजराः *राइनीसिया भृंग,* सफेद लट समूह के कीडे के वयस्क भृंग बाजरा के सिट्टे से बढते हुए दानो मे से उनका दूध चूस लेते है जिसके कारण सिट्टों मे दाने नही भरते और उपज मे भारी कमी होती है। 1.5 प्रतिशत क्यूनलफॉस चूर्ण का भुरकाव करने से इसका नियत्रण किया जा सकता है।

मूंगः तैला (जैसिड) या फुदका बहुत छोटे आकार का किन्तु चुस्त हरे रंग का कीडा होता है। फैनिट्रोथियॉन\(0 05 प्रतिशत) या कार्बरिल (0 1 प्रतिशत) छिडकाव करने से इसको नियत्रित किया जा सकता है। अगेती बुवाई करने से तैला अपेक्षाकृत कम नुकसान पहुँचाता है। *माहू या मोयला* जो छोटे आकार के मुलायम हरे या काले रग के बिना पख या पखो वाले कीडे पौधो के नाजुक हिस्सो के रस चूसते है। इनकी संख्या बहुत तेजी से बढती है। फसल पर प्रति हैक्टेयर एक लीटर मोनोक्रोटोफॉस अथवा डाइमेथोएट का छिडकाव करने से इन कीड़ो का नियन्त्रण सभव है। इसी प्रकार *सफेद मक्खी* के वयस्क तथा निम्फ दोनो ही पौधों का रस चूसकर उन्हे कमजोर बनाते है। किन्तु इससे कई गुना ज्यादा नुकसान ये पीत शिरा विषाणु रोग फैलाकर पंहुचाते मोठ मे यह रोग बहुत अधिक लगता है। इनका प्रसार रोकने के लिए सबसे पहले कीडा दिखते ही फसल पर मोनोक्रोटोफॉस 0 04 प्रतिशत का छिडकाव करना चाहिये। *तना मक्खी* साधारण मक्खी जैसी ही होती है। तने मे किए गये नुकसान के कारण पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए फसल पर मोनोक्रोटोफास (0 04 प्रतिशत) या डायमेथोएट (0 03 प्रतिशत) का छिडकाव करना चाहिए। सुण्डिया चने की फलियो में छेदकर उनमे पनप रहे दानो को अपना भोजन बनाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0. 05 प्रतिशत क्यूनलफॉस या 0 04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास का छिडकाव करें।

पादप व्याधि प्रबन्धन

बाजरा के रोग व रोकथाम

- **जोगिया (डाउनी मिल्डयू व ग्रीन इयर)** : *स्कलेरोस्पोरा ग्रामिनीकोला* नामक फफूँद से होने वाला यह रोग बाजरा पर दो प्रकार से आक्रमण करता है। इसकी रोकथाम के लिए बीजो को एप्रोन–35 एस.डी. (6 ग्राम प्रति किलो बीज) से उपचारित करके बोना चाहिये। रोग के लक्षण प्रारम्भिक अवस्था मे दिखते ही रिडोमिल 25 डब्ल्यू पी. (1 ग्राम प्रति लीटर) या मेनकोजेब (0 2 प्रतिशत) का छिडकाव करना चाहिये। रोग रोधक किस्मे जैसे आई सी.एम.एच 451, पूसा 23, पी एच.बी. 57, राज 171, आदि लगानी चाहिये।
- **गूदिंया** : यह रोग सिट्टों में दाने पडने के समय लगता है। सिट्टो पर दानों के स्थान पर छोटी छोटी गोन्द की तरह चिपचिपी बून्दे दिखाई देती है। इसकी रोकथाम के लिए रोगग्रसित खेत से बीज को कार्य मे लेने से पहले 20 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर ऊपर आये दानों को निथार कर फेंक दे एवं बाकी दानो को सुखाने के बाद काम मे लें।
- **कण्डुआ (स्मट)** : सिट्टे के कुछ ही दाने प्रभावित होते है जो अण्डेनुमा आकृति के हो जाते है व सिट्टे से बाहर तक निकल आते है। यह रोग चूंकि हवा में फैले बीजाणुओं से फैलता है इसलिये बीजोपचार से इस रोग की रोकथाम नही की जा सकती है। रोग के लक्षण देखते ही केप्टाफाल (0 2 प्रतिशत) के दो या तीन छिड़काव करने से रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।
- **रूखड़ी (स्ट्राईगा)**: यह एक परजीवी पौधा है जो अपना भरण पोषण बाजरा के पौधोपर करता है। फसल 1–2 माह की होने पर रूखडी के पौधे दिखाई देते हैं। इसकी रोकथाम के लिए रूखडी के पौधो को देखते ही उन्हे उखाड कर फैक देना चाहिये, ताकि बीज नही बन पाये। रासायनिक दवाओ मे 2–4 डी नामक दवाई के अमीन साल्ट का 450 ग्राम प्रति 500 लीटर पानी में छिडकाव करने से भी रूखडी को समाप्त किया जा सकता है।

सामान्य उपचार

- अगेती बुवाई व गर्मी के मौसम मे खेत की गहरी बुवाई करना।
- रोगी पौधो को खेत से उखाड कर नष्ट करना।
- खेत को स्वच्छ रखना व फसल चक्र को अपनाना।
- फसल चक्र में दलहनी फसलो को लेना।
- खेत को खरपतवार से मुक्त रखना।

ग्वार के रोग व रोकथाम

- **शाकाणु झुलसा (बैक्टीरीयल ब्लाईट)** : उत्तर भारत में जहॉ भी ग्वार की खेती होती है वहॉ रोग देखा जा सकता है। पत्तियॉ समय से पूर्व गिर जाती है। उग्र अवस्था मे तने पर लम्बाकार धारियॉ दिखाई देती है जिससे तना काला पड जाता है। पौधे पर फलिया कम लगती है व इनमे दाने भी कम हो जाते है। इसकी रोकथाम के लिए रोग रोधी या रोग सहनशील किस्म लगाना चाहिए। आर जी.सी. 986, एच ए जी. 75, आ जी सी. 1002, एच जी एस. 365 आदि प्रमुख रोग रोधी किस्मे है। बीजो को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन (0 025 प्रतिशत) से उपचारित करके बोना। आठ लीटर पानी मे 2 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइकलीन घोल कर बीजो को दो घन्टो तक डुबाकर निकाले एव छाया मे सुखाकर बुवाई करे।
- **शुष्क जड़ गलन (ड्राई रूट रोट)**: यह रोग भूमि व बीज दोनों ही तरीको से फैलती है। मुरझाये पौधोंव हल्के भूरे रंग के तनो के रूप मे इस रोग की पहचान हो सकती है। इसकी रोकथाम के लिए बोने से पहले बीजों को कार्बोनडेजिम (2 ग्राम प्रति किलो बीज) से उपचारित करे। स्ट्रेप्टोसाइक्लीन से उपचारित करना करने से झुलसा व जड गलन दोनो का उपचार किया जा सकता है। फसल चक्र मे बाजरा लेने से दूसरे वर्ष रोग कम होता है। जल्दी पकने वाली किस्मो को बोना चाहिये। पौधोकी कतारो के बीच में खेत में नहीं काम आने वाले पौधोके अवशेषो की परत डालना एव 35 टन मींगनी की खाद मिलाना आदि उपयोगी है। सिचाई की सुविधा वाले क्षेत्र जहॉ रबी की फसल भी ली जाती है, 25 टन सरसो की फलकटी व आधा टन सरसो की खली मिलाकर मई मे खेत मे डालनी चाहिये व तेज गर्मी के समय एक पानी देना चाहिये।
- **पत्ती धब्बा (अल्टनेरिया लीफ स्पाट)** : इस रोग फफूँद की उग्र अवस्था मे फलियॉ कम लगती है व दानो का आकार छोटा होता है। यह रोग बीजों द्वारा फैलता है। इसकी रोकथाम के लिए रोग रहित क्षेत्रो से उत्पन्न बीजो को काम मे लेने से इस रोग की रोकथाम हो सकती है। रोग सहनशील किस्मे जैसे एच जी एस 365, आर जी.सी 986 आदि बोनी चाहिये। रोग के लक्षण दिखते ही कापर आकसीक्लोराइड (02 प्रतिशत) को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन के साथ मिलाकर छिडकाव करना चाहिये। इस प्रकार शाकाणु झुलसा व पत्ती धब्बा का एक साथ ही उपचार किया जा सकता है।
- **छाछया (पाउडरी मिल्ड्यू)**: यह रोग *ओइडोपसिस टाऊरिका* नामक फफूँद से होता है। रोग की उग्र अवस्था मे पत्तिया जल्दी गिर जाती है। इसकी रोकथाम के लिए गन्धक युक्त फफूँदनाशक (02 प्रतिशत) का छिड़काव सबसे प्रभावकारी व सस्ता है। डिनोकेप, ट्राईडीमोर्फ, आदि का छिडकाव (01 प्रतिशत) भी काफी प्रभावशाली रहता है लेकिन थोड़ा मंहगा है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न दलहनी तिलहनी फसलो एव फलो के रोग एव हानिकारक कीटाणुओ की रोकथाम व नियत्रण के उपाय पर भी "काजरी" के वैज्ञानिको द्वारा शोध एव नियंत्रण के उपाय स्तरीकृत व सुझावित किये गये है।

मरू सेना 1

पश्चिमी राजस्थान की भूमि से ही निकाली गई एक मित्र फफूद *ट्राईकोडर्मा हारजेनियम* का जैविक सूत्रीकरण है। यह भूमि जनित रोगों जैसे आर्द्र गलन, जड गलन, उखटा या उबसूख, सूखा जड गलन आदि को उत्पन्न करने वाली हानिकारक फफूदो जैसे *फ्यूजेरियम, राईजोकटोनिया, मक्रोफोमिना फेजीयोलीना, पीथियम, गेनोडर्मा, एसपरजीलस* आदि को भूमि मे ही नियन्त्रण करने के काम आती है।

मरू सेना 2

मरू सेना 2, एक मित्र फफूँद *एस्परजीलस वरसीकोलर* का जैविक सूत्रीकरण है जो ग्वार, मूंग, मोंठ, चंवला, तिल, ज्वार आदि फसलो में लगने वाले शुष्क जड गलन रोग व जीरे की फसल में लगने वाले उखटा (उबसूख) रोग की रोकथाम के लिये काफी उपयोगी है।

मरू सेना 3

शुष्क जड गलन रोग *मेक्रोफोमिना फेजीयोलीना* नामक फफूँद के आक्रमण से होता है, जो इस क्षेत्र की फसलो जैसे ग्वार, चवला, मूग, मोठ, तिल, ज्वार आदि को काफी नुकसान पहुँचाता है। यह रोग उग्र मात्रा में फैलता है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसधान सस्थान, जोधपुर में किये गये अनुसंधान परीक्षणों से सरसों प्रजाति के अवशेषो को तेज गर्मी के दौरान जमीन मे मिलाने व एक सिचाई देने से इस रोग के रोकथाम की एक नई तकनीक का विकास किया गया है। उसी दौरान सरसों के अवशेषों युक्त मिट्टी मे एक जीवाणु–*बेसीलस फ़रमस* को खोजा गया जो *मेक्रोफोमिना* फफूंद की वृद्धि को रोकता है।

गाय दूध से बीजोपचार

जोधपुर जिले मे लगभग 1500 हैक्टेयर भूमि पर मिर्च की खेती की जाती है और यहॉ की देशी किस्म मथानिया–लाल अपने फलो की लम्बाई, चिकनी सतह व चटक लाल के साथ कम तीखापन होने से अपना विशेष महत्व रखती है।

मिर्च को हानि पहुँचाने वाले रोगो में डाइबैक (माथ बँधना), लीफ कर्ल व मोजेक वायरस (माथ बंधना, डोला पडना या टिपरियो) तथा रोप की जड़ो मे सूत्रकृमि द्वारा बनने वाली गॉठे प्रमुख है। इनके अलावा जीवाणुओं से होने वाले पत्ती धब्बा रोग व जड मे होने वाले उकठा या म्लानि (विल्ट) रोग भी कही–कही पर हानि पहुँचाते है। स्वस्थ फ़सल से अधिकतम पैदावार लेने के लिए जरूरी है कि इन नाशी रोगों से फसल को

बचाया जाए। चूँकि रोग के कारक विषाणु बीज, सफेद मक्खी, जेसिड्स, एफिड्स और माइट्स (मकडी) जैसे कीटो से फैलते है इसलिए पौधशाला (नर्सरी) मे बुवाई से पहले स्वस्थ, विषाणु रोगी पौधे ही लगाने चाहिए। बीजो को देसी गाय के कच्चे दूध मे (1 1) यानी दूध मे उतनी ही मात्रा मे पानी मिलाकर 24 घटे तक भिगों कर उपचारित कर ले व उपचारित बीजो को छाया मे सुखा कर बुवाई करना चाहिए। इसी तरह उपचारित बीज को मैंकोजेब व कैप्टाफॉल से उपचारित कर के बोने से डाइबैक रोग से भी बचा जा सकता है। दूध से उपचारित बीजों मे अंकुरण भी जल्दी होता है व पौधो को विषाणु रोग से बचाने मे भी आसानी होती है।

कृन्तक (चूहा) नियन्त्रण

राजस्थान में चूहो की विध्वंसक गतिविधियॉ बाजरे, मूग, मोंठ, मूगफली, जीरा, टमाटर, मिर्च, गेहूँ, सरसों आदि प्रमुख फसलो मे 5 से 15 प्रतिशत तक हानि पहुँचाती है। ये फसले कट कर जब खलिहानो में आती है तो चूहे वहॉ भी पहुँच जाते हैं। वहॉ फसल को खाते भी है और बिलो मे भी उठा कर ले जाते है। उपज के खलिहान से गोदाम तथा मण्डी तक पहुँचने तक चूहे इनका पीछा नहीं छोडते हैं। भण्डारण एवं आवासीय क्षेत्रो मे भी चूहों का उत्पात सदैव बना रहता है। कृंतकों द्वारा खाद्यान, घास, चारागाह, सग्रहीत सामग्री, उद्यानो, प्राकृतिक वनस्पति और पौध रोपण को बहुत अधिक क्षति पहुँचाई जाती है।

चूहों की प्रमुख हानिकारक प्रजातियाँ

भारतीय जरबिल (बडी रतोल) भास्तीय मरु जरबिल, नर्म रोम वाला चूहा, रोम युक्त पैरो वाला जरबिल (छोटी रतोल) फसली खेतो तथा चारागाहो मे तथा घरेलू चूहा व घरेलू चुहिया रिहायशी क्षेत्रो व गोदामों मे हानि पहुँचाते है।

चूहा नियंत्रण के उपाय

बिना किसी विष के प्रयोग द्वारा

- पिजरो का प्रयोग करके भण्डारण एवं आवासीय क्षेत्रों मे चूहों को आसानी से पकडा जा सकता है। पकडे गये चूहो को कभी भी किसी और स्थान पर जीवित नहीं छोडना चाहिये। इन्हें पकडने के बाद चूहों सहित पिंजरों को 2–3 मिनट पानी में डुबो कर चूहो को मार देना चाहिये।
- खतपतवार नियंत्रण से भी चूहों के आक्रमण मे काफी कमी आ जाती है।
- चूहे ज्यादातर खेतों की ऊँची–ऊँची मेडो पर बिल बनाकर रहते हैं। यदि ये मेडें जरुरत के मुताबिक छोटी कर दी जाये तो भी चूहो का प्रकोप कम हो जाता है।

विष के प्रयोग द्वारा: जिंक फॉस्फाइड (काला जहर) तथा ब्रोमेडियोलोन प्रमुख चूहानाशी रसायन है। जिसमे जिक फॉस्फाइड, अत्यन्त तेज असरकारक तथा ब्रोमेडियोलोन मध्यम असरकारक विष माने जाते हैं। बाजरा मे मूंगफली तेल 2 प्रतिशत और जिंक फॉस्फाइड 2 प्रतिशत अथवा 0 005 प्रतिशत ब्रोमाडिमोलोन मिलाकर बनाया गया विष चुग्गा रेगिस्तानी चूहों के नियत्रण हेतु प्रभावकारी साबित हुआ है।

कृतक पारिस्थितिकी पर "काजरी" मे किए गए अध्ययन में चूहो के नियत्रण उपाय करने हेतु उपयुक्त मौसम, चुग्गा बनाने के प्रभावकारी तरीके और चुग्गा रखने के केन्द्रो के मध्य उपयुक्त दूरी पर प्रभावकारी तकनीकी विकसित की है। इन जानवरो के जैविक नियत्रण हेतु इनकी सुगध चिन्हित करने वाली ग्रथी के उत्स्वेद के प्रयोग पर भी अध्ययन किया गया है।

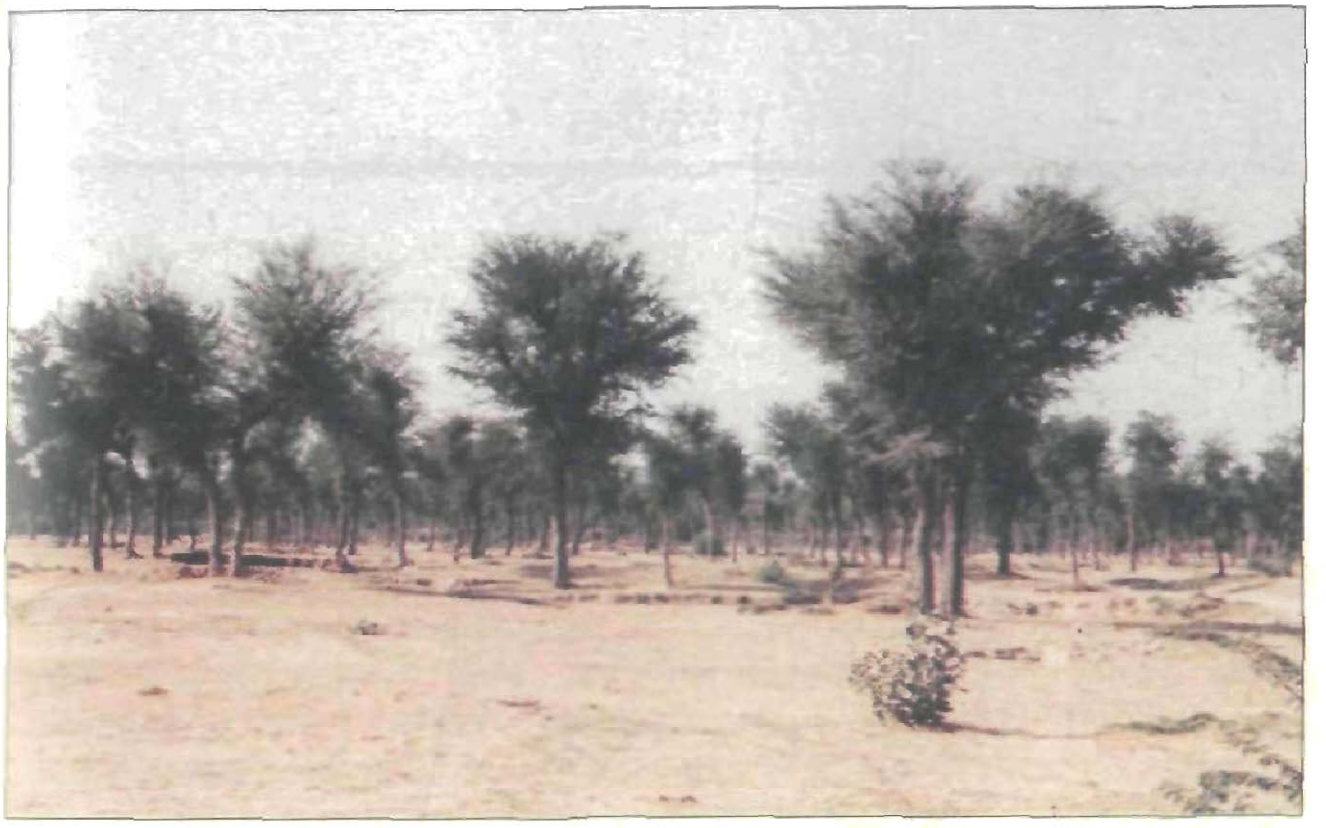

रियां पुरोहिता, नागौर में स्थित खेजड़ी का ओरण

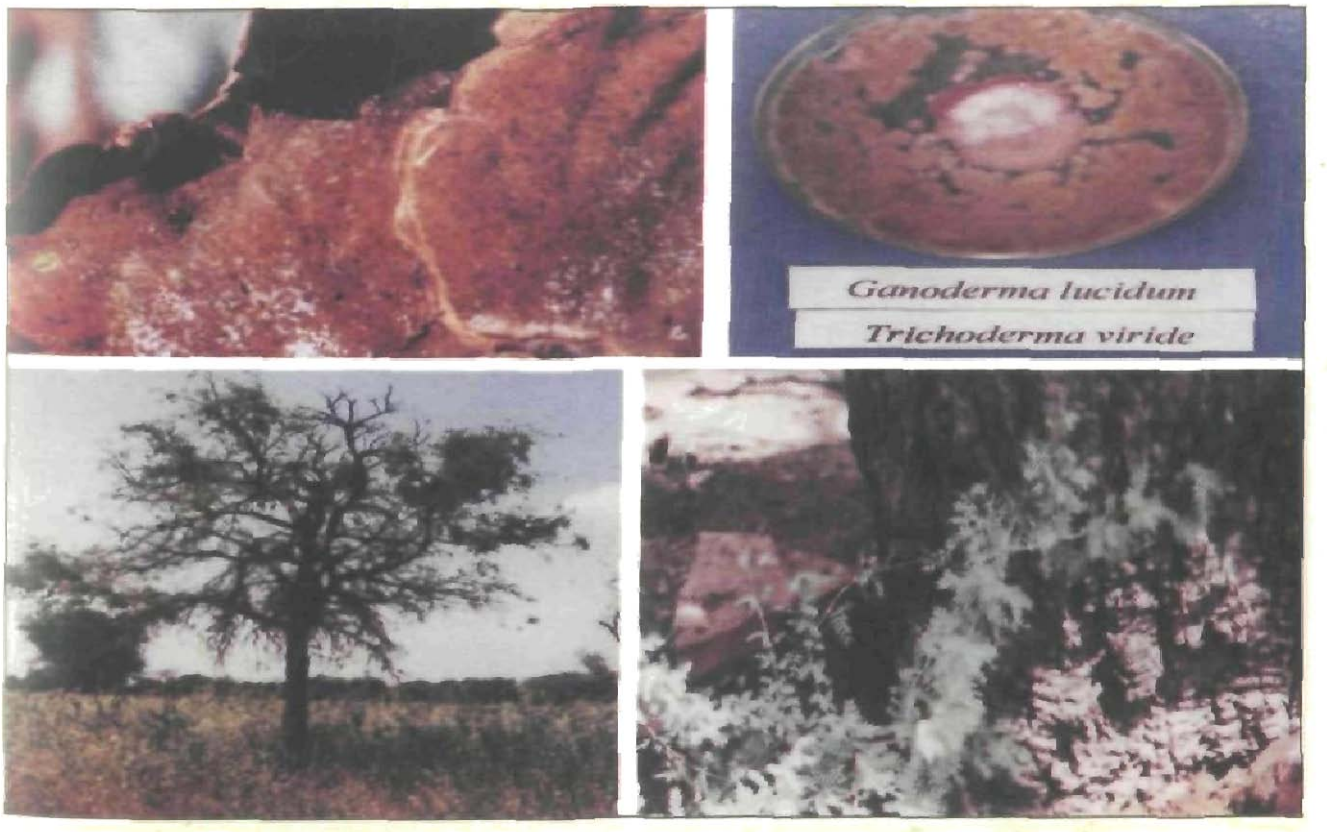

खेजड़ी का सूखा रोग (*गेनोडर्मा ल्यूसीडम* कवक) का जैविक नियंत्रण

वनीकरण

मरू भूमि वनीकरण हेतु पौधों का चयन

रेगिस्तान के स्थानीय पादप प्रजातियॉ न केवल संख्या मे कम है अपितु बहुत धीमी गति से बढने वाले है। "काजरी" द्वारा संसार के ऐसी ही समान जलवायु वाले क्षेत्रो के विदेशी पौधो का परिचय व चुनाव पर अधिक ध्यान दिया गया है। इसी संदर्भ मे 112 *यूक्लिप्टस* (सफेदा) की 65 *अकेसिया* (बबूल) और 82 विभिन्न पौधों की प्रजातियॉ विभिन्न देशों जैसे मैक्सिको, अमेरिका, लैटिन अमेरिका, रूस, अफ्रीका, इजराइल और मध्य पूर्व से मंगा कर परिचित की गई हैं। अन्वीक्षा द्वारा ज्ञात परिणामो के अनुसार *युक्लिप्टस कमान्डयूलेनसिस* (सफेदा), *ई. टरमीनालिस, इ मीलोनफोलिया, अकेसिया टोरटीलिस* (इजराइली बबूल), *ए रेडियाना, ए सेनेगल, ए साइबेरिअना, ए. एनीयरा, कोलोफोसफारमम मोपेन, डाइक्रोस्ट्स ग्लोमीरेटा, ब्रासीलेटा मोलिस, सीनस मोलिस* और *प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा* (इजारइली पेरू तथा चिली चाइल से अग्रेजी बबूल) भारतीय मरूस्थल हेतु बहुत ही आशाजनक पौध प्रजातियॉ पाई गई है। अन्वीक्षित की गई सभी विदेशी जातियो मे से *अकेसिआ टोरटीलिस* (इजराइली बबूल) सर्वाधिक अच्छी ईंधन और चारा देने वाली जाति शुष्क क्षेत्रो हेतु रही है। यह पेड लगने के दस वर्ष बाद 40 टन सूखा ईंधन प्रति हैक्टेयर उत्पन्न करता है। "काजरी" द्वारा इसे परिचित एव परीक्षण किए जाने के बाद यह न केवल पश्चिमी राजस्थान अपितु अन्य राज्यो हेतु भी एक उत्तम पेड की जाति पाई गई है।

खेजड़ी

भारतीय मरू क्षेत्र के स्थानीय पेडो में खेजडी (*प्रोसोपिस सिनरेरिया*) एक महत्वपूर्ण एवं बहु–उपयोगी पेड है। इस पेड को मरू क्षेत्र का 'कल्प–वृक्ष' भी कहा जाता है। यह पेड धीमा बढने वाला है इसलिए यह वनीकरण हेतु प्रयोग में कम उपयोगी रहा है। इसके विस्तार और विदोहन आदि अन्य तथ्यो का अध्ययन करने के लिए विस्तृत सर्वे किया गया तथा इसके जाननिक प्रभागो पर अध्ययन किया गया। इसके कुछ प्रवर चुनावों ने 7.3 मी की ऊँचाई 6 वर्ष मे प्राप्त की। सर्वे के दौरान इसके कुछ पेड बहुत ही अच्छी ऊँचाई एवं बढत वाले प्राप्त हुए। ऐसे पेडो का चयन सुधार अध्ययन हेतु किया गया। देशी तेज बढने वाली जातियो के परिचय और प्रजनन पर भी कार्य किया जा रहा है। *प्रोसोपिस सीनरेरिया* (खेजडी) के दो प्रवर प्रकारों (पी.सी.4 और पी सी 5) को हाल ही मे पहचाना गया है। *पी सीनरेरिया* (खेजडी) के जाननिक प्रभाग से समानता वाले बीजो के उत्पादन हेतु तकनीक को स्तरीकृत किया जा रहा है।

खेजड़ी सूखने की समस्या व समाधान

मरू भूमि के कल्पवृक्ष खेजडी मे पिछले कुछ वर्षों से असमय सूखने की समस्या से किसान काफी चिंतित हैं। राज्य के नागौर, चुरू, सीकर, जोधपुर तथा झुँझनू जिलो मे खेजडी की सख्या में तेज गिरावट आयी है। "काजरी" द्वारा किये गये अनुसधान मे दूसरी वजहों के साथ कीडे एव बीमारियॉ लगना समस्या का प्रमुख कारण पाया गया। जहॉ सिरैम्बिसिडी कुल के *अकैन्थोफोरस सिरैटिकॉर्निस* कीट की बडे आकार की लटे जड़ो को खोखला कर देती है, वही *गैनोडर्मा* कवक पेडो की परिवहन प्रणाली को बाधित कर देती है, जिसके कारण वे सूख जाते है। इन कीडो एवं बीमारी के साथ–साथ प्रकोप से पेडों के सूखने की गति तेज हो जाती है।

सूखे हुए खेजडी के पेड को अक्सर तने समेत निकाल लिया जाता है परन्तु जडो मे लटे सुरक्षित रह जाती है, अत कुछ गहरा खोद कर जडे निकाल लेने से बची लटो को जडो के अन्दर से अथवा आसपास की मिट्टी से भी निकाल कर खत्म किया जा सकता है। लटो के वयस्क गहरे भूरे रग के भृगो को बरसात के मौसम मे रात मे एकत्रित कर उन्हे नष्ट किया जा सकता है। खेतो में वृक्षो के तने के निचले भाग पर यदि भपोड दिखायी दे, तो उन्हे तुरन्त हटा कर जला देना चाहिये। इससे उनका अन्य स्थानो पर प्रसार रुकेगा। यदि जडो के आसपास फोरेट कीटनाशक दवा डाल दी जाये तो इन लटों को नष्ट किया जा सकता है। *गैनोडर्मा* कवक के रोगाणुओ को प्राकृतिक शत्रु कवक *ट्राइकोडर्मा* अथवा *एस्परजिलस टैरियस* द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। इसके लिए इनको गोबर की खाद के साथ मिला कर पेडों के नीचे गोलाकार खाई खोद कर मिट्टी में मिला कर खाई को वापस पाट कर पानी दिया जाता है, जिससे नमी बनी रहे। कीटनाशक तथा प्राकृतिक शत्रु कवक का उपचार छह माह के अन्तराल से तीन बार करना चाहिये। इन उपचारों का असर तुरन्त नही होकर कुछ काल पश्चात होता है, क्योकि कारक कीट तथा कवक दोनो का जीवन चक्र काफी लबा होता है। प्रभावित वृक्षो को समय रहते चिह्नित कर उनका उपचार कर उन्हे सूखने से बचाया जा सकता है।

वनीकरण और वात कटाव नियंत्रण

वायु से मिट्टी का कटाव रेगिस्तान की बहुत बडी समस्या रही है दोनों ही स्थान जहॉ से मिट्टी उडती है और जहॉ जमा हो जाती है बंजर हो जाते है। इसलिए रेगिस्तानी क्षेत्रों में किसी भी प्रबन्धकीय कार्यक्रम हेतु पहली आवश्यकता वृक्ष पट्टिका लगाना है क्योकि दूसरा कोई भी कार्य यहॉ तक कि कृषीय कार्य करने से पूर्व भी भू–तल पर वायु की गतिविधियो को पहले नियंत्रित करना आवश्यक है। समस्या की भयावहता को देखते हुए पॉच पक्तियों और तीन पंक्तियो मे पिरामिड आकार में असमुख पौधे लगाना प्रस्तावित किया गया है। इसके लिए उपयुक्त पेड और झाडियों की किस्में

इजराइली बबूल (*अकेसिया टोरटीलिस*), बबूल (*अकेसिया निलोटिका*), सीरिष (*एलबीजिआ लब्बैक*) और अग्रेजी बबूली (*प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा*) है।

टीबा स्थरीकरण

रेगिस्तान मे 30 6 प्रतिशत क्षेत्र मे प्रबलतम रूप मे रेत के टीले और 34 प्रतिशत क्षेत्र मे अर्द्ध प्रबल रूप मे रेत के टीले पाए जाते हैं। इस प्रकार पश्चिमी राजस्थान का 64.6 प्रतिशत क्षेत्र टीबा–गतिविधियो के अतर्गत है जो कि कृषीय भूमि, सडक रेल यातायात, भवनो और रहवासीय इलाको हेतु बहुत बडी संकटकारी समस्या उत्पन्न करते हैं। इंदिरा गॉधी नहर परियोजना के निर्माण और प्रबध में भी उडी हुई रेत ने अनेक समस्याएँ उत्पन्न की है। इन समस्याओं का समाधान करने हेतु सन् 1952 से ही यह सस्थान टीबा स्थिरीकरण तकनीकी विकसित करने मे लगा हुआ था तथा उचित तकनीके विकसित भी कीं। वन–विभाग राजस्थान ने इनको बडे पैमाने पर अपना लिया। टीबा स्थिरीकरण करने के लिए निम्न तकनीके विकसित की गई।

जिन टीबो का स्थिरीकरण करना हो उन टीबो की बाडबन्दी करना, जिससे जैविक अडचने रोकी जा सकें।

टीबो की सतह पर सूक्ष्म वायुरोधक लगाना – अगर हवा का प्रभाव कम हो तो वायु अवरोधक 5 मी. के अन्तराल पर समानान्तर दूरी पर पंक्तियों पर लगाना चाहिये। हवा का प्रभाव अधिक हो तो वायु–अवरोधक को शतरज को आकार में लगाना चाहिये। वायु–अवरोधक लगाने से टीबो की सतह पर से मिट्टी का कटाव बहुत कम हो जाता है। सूक्ष्म वायु रोधक पक्तियॉ लगाने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध झाडियॉ जैसे खीप (*लेप्टडीनिआ पायरोटेनीका*), पाला (*जिजीपस न्यूमूलेरिआ*), सेमिआ (*क्रोटालारिआ भूरिआ*) और भूरट (*पेनीकम टरगीडम*) का प्रयोग किया जा सकता है। इस हेतु उपयुक्त पेडो की किस्में हैं इजराइली बबूल (*अकेसिआ टोरटीलिस*), अग्रेजी बबूल (*प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा*), खेजडी (*प्रोसोपिस सीनरेरिया*), कुमट (*अकेसिया सेनेगल*), सीरीष (*अलबीजिया लब्बैक*) और घासों में सेवण (*लेज्यूरस सिंडीकस*) और धामण (*सेकरस सिलीअरिस*) सर्वाधिक उपयुक्त है।

पौध व घासरोपण

सूक्ष्म वायु–अवरोधक शतरजी डिजाइन मे लगाने के बाद उसमे 5 x 5 मी. दूरी पर उपयुक्त पौधे लगाये जा सकते है। सेवण घास, मुरट घास तथा तुम्बा के बीज का बरसात मे छिडकाव कर देना चाहिये। टीबा स्थिरीकरण के लिये निम्नलिखित पेड़, झाडिया व घास उपयुक्त पाए गये हैं *अकेसिया टोरटलिस* (इजरायली बबूल), *केलीगोनम पोलीगोनाइडिस* (फोग), *अकेसिया न्यूबीका* (न्यूबीका), *अकेसिया बेविनोसा* (आस्ट्रेलियन बबूल), *कोरदिया रोथाई* (गून्दी), *लेस्यूरस सिडीकस* (सेवण), *पेनीकम एन्टीडोटेल* (मूरट), *सिट्रल्स कोलोसिन्थिस* (तुम्बा) आदि।

टीबा स्थाई करने के पश्चात् स्थाई टीबो से कई प्रकार के अध्ययन किये गये व जैसे रेत की गतिशीलता, मृदा उर्वरता, मृदा की नमी, भूमि की बनावट, पौधो का भार और पेडो की जडो की बनावट इत्यादि। परीक्षणो से ज्ञात हुआ है कि चल व अर्द्ध–चल टीबो से क्रमश 615 टन व 325 टन प्रति हैक्टेयर मिट्टी का कटाव होता है। अगर टीबो का स्थिरीकरण होता है तो मिट्टी का कटाव करीब 75 प्रतिशत रूक जाता है।

इसी प्रकार यह भी देखा गया है कि स्थिरित किये गये किये गये टीबों की उर्वरा शक्ति मे बढोतरी होती है। यह भी देखा गया है कि उपलब्ध नत्रजन व फॉस्फोरस की मात्रा भी 120 प्रतिशत तथा 158 प्रतिशत अधिक पायी जाती है। इसका मुख्य कारण मिट्टी का कटाव रूकना तथा पेड–पौधो की सूखी पत्तियों व जडो का जमीन मे सडने से मृदा मे खनिज तत्वो का सुदृढीकरण होता है। खनिज लवण ही नहीं, अपितु भूमि की सरचना मे भी सुधार देखा गया है।

पिछले कुछ वर्षों से अरब देशो मे पेट्रोलियम पदार्थों के शुद्धिकरण के बाद बचे अपशिष्ट (ब्यूटामीन या स्फाल्ट) से टीबों की सतह पर छिडकाव के बाद मे वृक्षारोपण किया जा रहा है। इसी प्रकार जहॉ चिकनी मिट्टी अधिक मात्रा में उपलब्ध हो वहॉ चिकनी मिट्टी का घोल बनाकर छिडकने से झाडियां की मल्चिंग करने की जरूरत नही होती है।

खनन प्रभावित भूमि का पुनरूत्थान

किसी स्थान पर भूतल खनन का सीधा असर वनस्पति के विकास, मृदा उच्छेद तंथा मिट्टी की सघनता पर पडता है। इससे भूमि के कटाव और अवसाद मे वृद्धि, भूतल तथा भूजल रासायनिकी मे परिवर्तन तथा स्थल के सौन्दर्य मे कमी हो जाती है। इसके अलावा भू–भाग के दुर्गम ढाल पर खिसकने की जोखिम बढ जाती है। भारतीय मरूस्थल की अर्थ व्यवस्था मे जिप्सम तथा चूना–पत्थर के खनन की अहम् भूमिका है। परन्तु जिप्सम और चूना–पत्थर के अव्यवस्थित खुले खनन तथा पर्यावरण सुरक्षा के उपाय काम मे नही लेने के कारण भूमि ससाधन का क्षरण हुआ है, यथा प्राकृतिक वनस्पति का विनाश, समतल भूमि का विषम भूतलरूप, वर्षा जल सचयन में कमी, मृदा के रासायनिक एवं भैतिक गुणो में असामान्य परिवर्तन, भू–पर्पटी तथा मिट्टी का अपक्षरण आदि। ऐसे अवह्रासित भू–भाग का शुष्क क्षेत्रो में पुनरूत्थान करना, विशेषकर शुष्क पर्यावरण मे, चुनौती भरा कार्य है। संस्थान ने ऐसे खनन प्रभावित क्षेत्रों के पुनरूत्थान हेतु उपयोगी तकनीक विकसित की है। इस तकनीक मे विभिन्न वनस्पति आवरण के द्वारा भू–भाग को आच्छादित करना, मृदा पर्यावरण सुधारना तथा लगातार पानी तथा उर्वरक दिये बिना तथा जनावरो से पूर्ण सुरक्षित किये बिना अनुकूल बनाकर पारिस्थिकीय स्थिरता प्रदान करना सम्मिलित है। चूना–पत्थर खनन क्षेत्रो मे *अकेसिया प्लानीफ्रान्स, अकेसिया सेनेगल, सर्सिडम फ्लोरिडम* तथा *डाइक्रोटिस नूटान्स* वृद्धि के अनुसार अधिक उपयुक्त रहे।

तेज वायु के वेग द्वारा उड़ी मिट्टी से अवरूद्ध सड़क मार्ग : मरूस्थल की विकट समस्या

रेगिस्तानीकरण नियन्त्रण : काजरी द्वारा विकसित तकनीक द्वारा टीबा स्थरीकरण

चारागाह विकास

मरूस्थलीय क्षेत्रो मे पशुपालन आजीविका का एक मुख्य साधन रहा है जबकि इन क्षेत्रो मे चारा उत्पादन बहुत ही कम है और अकाल वाले सालो मे चारे की कमी बहुत अधिक हो जाने पर चारा दूसरे राज्यों से मंगवाना पडता है। इन क्षेत्रो मे बारानी खेती के जोखिम को कम करने के लिये घास आधारित कृषि पद्धति को अपनाना अच्छा साबित हुआ है। घास आधारित कृषि पद्धतियो को अपनाकर पशुपालन मे वृद्धि के साथ चारे की कमी को दूर करके मरूभूमि पर टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

मरू क्षेत्रो मे चारे के लिये घास की खेती से चारा उत्पादन, भू–सरक्षण आदि के लाभ को देखते हुए लेफार्मिंग, पट्टीदार खेती, घास–दलहन मिश्रण खेती एव चारागाह विकास पर "काजरी" द्वारा बहुत अध्ययन किया गया है और महसूस किया गया है कि इन क्षेत्रो मे किसान द्वारा अपनी 25 प्रतिशत भूमि पर चारा घासो की खेती अपनाकर भूमि सुधार एव संरक्षण के साथ–साथ टिकाऊ पैदावार को बढाया जा सकता है।

इस पद्धति मे चारा प्रदान करने वाली घासो के साथ–साथ पेडो एव झाडियो को भी लगाते है। साधारणत यह पद्धति कृषि अयोग्य भूमि मे अपनायी जाती है। ककरीली, पथरीली एवं ढालुनुमा भूमि को उपयोगी बनाने के लिये "काजरी" के गोचर भूमि प्रबधन एव भू–संरक्षण क्षेत्र भोपालगढ मे एक अध्ययन किया गया। इस क्षेत्र मे कई जगह नगी चट्टाने है और 80 प्रतिशत क्षेत्र मे मिट्टी की गहराई 0–8 से.मी. है। इस क्षेत्र मे सात प्रकार के चारा वृक्ष एवं झाडियॉ लगाई गयी। वृक्षो और झाडियो को 10 x 4 मीटर के अन्तर पर लगा कर इनके बीच मे धामण घास लगाई गई। पन्द्रह वर्षो के बाद इजरायली बबूल, कुमट, नूतन और नीम की जीवितता दर क्रमश 96 7, 81.7, 78.3 और 53.3 प्रतिशत रही। घास की पैदावार इजरायली बबूल और नूतन के अलावा सभी वृक्षो के साथ लगभग बराबर रही। वृक्ष रहित प्लाट मे घास की पैदावार 13 क्विटल प्रति हैक्टर सूखे चारे के रूप मे मिली लेकिन इजरायली बबूल और नूतन के साथ घास की पैदावार क्रमश. 7 5 और 6.1 क्विटल प्रति हैक्टर ही मिली।

नूतन मे लाइन से लाइन के बीच 10 मीटर के अन्तर मे जडो (सकर्स) ने काफी फैलाव किया। इसका पत्तीदार चारा भी सबसे अधिक (8 9 किलोग्राम प्रति वृक्ष) मिला। अधिक फैलाव के कारण गोचर की हरियाली और भेड, बकरी की चराई के लिये पथरीली धरती पर पनपने वाली यह एक उत्तम चारा प्रदान करने वाली झाडी सिद्ध हुई है।

पन्द्रह वर्ष पुराने कुमट के पेडो से औसत बीज तथा बीज के छिलको का चारा क्रमश 335 8 और 603.3 ग्राम प्रति वृक्ष मिला। बीज न्यूनतम 20 ग्राम और अधिकतम

1280 ग्राम और सूखी फली के छिलको का चारा न्यूनतम 40 ग्राम और अधिकतम 2250 ग्राम प्रति वृक्ष मिला।

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर मे किये गये अध्ययन मे अंजन घास को कई सालो तक खेत मे रखने के बाद बाजरे की फसल ली गई। परिणाम बताते हैं कि अंजन घास को चार, छ. और आठ साल तक खेत मे उगाने के बाद बाजरा की खेती करने पर क्रमशः 97, 397 और 445 किलोग्राम प्रति हैक्टर बाजरे की पैदावार अधिक प्राप्त हुई।

अध्ययन से यह भी मालूम हुआ कि घास के अवशेष मिट्टी मे मिलाने से बाजरे की फसल की बढवार शुरूआत मे अच्छी होती है और मृदा में नमी काफी समय तक संरक्षित भी रहती है जिससे फसल सूखने से बच सकती है।

वायुरोधक पट्टीदार खेती

मरूक्षेत्रों में बारानी खेती के जोखिम को कम करने के लिये पट्टीदार खेती घासो के साथ अच्छी साबित हुई है। रेतीली भूमि में मिट्टी के कटाव को रोकने के लिये घास पट्टियाँ हवा के विपरीत दिशा मे लगाने से मिट्टी के कटाव को कम किया जा सकता है और इन पट्टियॉ के बीच में आसानी से खेती की जा सकती है। घास और फसल की पट्टी का अनुपात 1:3 अच्छा साबित हुआ है। पश्चिमी राजस्थान के रेतीले और कम वर्षा वाले क्षेत्र के लिए सेवण घास उपयुक्त है। इन घासो से प्रतिवर्ष पौष्टिक चारा मिलता है। इसके अलावा घासे गर्मी के महीने मे तेज हवा चलने पर मिट्टी के कटाव को कम करती है। इस प्रकार भूमि का उर्वरापन बना रहता है। हवा द्वारा मिट्टी का कटाव कम होने से वातावरण मे भी सुधार होता है। इस कृषि पद्धति द्वारा बहुवर्षीय घासो से अकाल के वर्षो जब फसल नष्ट हो जाती है तब भी चारा मिल जाता है। अच्छी वर्षा वाले सालों मे घास और फसल दोनो की ही अच्छी पैदावार मिलती है। वायुरोधक सेवण घास की हवा के विपरीत लगायी गयी पट्टी के साथ मूग और मोठ की पैदावार क्रमशः 212 और 115 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर अधिक प्राप्त की जा सकती है।

घास दलहन मिश्रण

पशुओ के उत्तम स्वास्थ्य के लिये कम से कम 7 प्रतिशत प्रोटीन आवश्यक है और दुधारू पशुओ के लिये इससे भी अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। मरू क्षेत्र के चारागाहो में वर्षा के दिनों मे जब घास हरी रहती है तब उसमे 8–10 प्रतिशत प्रोटीन होती है जो बाद में सूखने पर घटकर 2 प्रतिशत से भी कम रह जाती है जबकि पशु के रूमेन मे पाये जाने वाले जीवाणुओं के लिये चारे में कम से कम 1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन होना अनिवार्य है। अतः इस कमी को घासों के साथ दलहनी चारे उगाकर पूरी कर सकते है। दलहनी पौधें चारागाह की गुणवत्ता, उत्पादकता एव पशुधन उत्पादन बढाने के साथ–साथ भूमि की उर्वरकता भी बढाते है। घासों के साथ दलहनी चारे वाले

पौधे जैसे *क्लाइटोरिया टरनेसिया, लबलब परपूरियस, स्टाइलो हमाटा,* मोंठ और ग्वार आदि की खेती लाभदायक है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में घासों के साथ मोंठ और ग्वार उपयुक्त है। रेतीली भूमि मे सेवण घास के साथ मोंठ उपयुक्त है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसधान संस्थान, जोधपुर के 400 मि.मी. से अधिक वार्षिक वर्षा वाले गोचर भूमि प्रबन्धन क्षेत्र बिसलपुर (पाली) पर किये गये अध्ययन मे घास करड + *स्टाइलो हमाटा* दलहनी चारा घास मिश्रण में अधिकतम 42 क्विंटल प्रति हैक्टर सूखे चारे की उपज मिली। जबकि अकेले करड घास और स्टाइलो हमाटा से क्रमशः 33 और 14 क्विटल प्रति हैक्टर सूखा चारा मिला। करड घास + *स्टाइलो हमाटा* दलहनी चारा मिश्रण मे प्रोटीन की पैदावार अकेले घास के मुकाबले 88.1 प्रतिशत अधिक मिली।

अकाल के समय चारा उत्पादन

पश्चिमी राजस्थान मे लगभग हर तीन वर्षो मे एक वर्ष अकाल पडता है। विषम अकाल की स्थिति मे चारे की कमी से पशुओ को बचाने के लिये पहले से लगाई हुई उन्नत अजन, सेवण जैसे बहुवर्षीय घासो के चारागाह अथवा सेवण घास के प्राकृतिक चारागाह में कुछ पानी देकर (फव्वारे द्वारा) लगभग एक महीने में ही चारे की एक कटाई लिया जा सकता है। अकाल के वर्षो मे कम पानी व कम समय मे इन घासो से हरे चारे का उत्पादन किया जा सकता है। पश्चिमी राजस्थान के इदिरा गॉधी नहर परियोजना क्षेत्र में कृषि अयोग्य भूमि पर इस पद्धति द्वारा अकाल के समय चारे का उत्पादन किया जा सकता है। घास के हरे चारे को पुष्प अवस्था में काटकर सूखा चारा (हे) भी बना सकते है। जिसे चारा बैंक मे सुरक्षित रखा जा सकता है और आवश्यकतानुसार उपयोग मे लिया जा सकता है।

घास भूमि विकास

घास रेगिस्तानी पारिस्थितिकी हेतु आदर्श रोपण पादप हैं। इससे न केवल पशुओ हेतु चारे का स्थायी स्रोत मिलता है अपितु वात कटाव के संकट से निपटने व मृदा सरक्षण मे भी सहायता मिलती है। इसलिए इस क्षेत्र हेतु घास के महत्व को नकारा नही जा सकता। "काजरी" ने कई आशाजनक रेगिस्तानी घास की किस्मो अंजन (*सेकरस सिलियरिस*), सेवन (*लेप्यूरस सिंडीकस*), धामण (*सेंकरस सेटीजेरस*), (*डाइकेन्थियम एन्यूलेटम*) पर विस्तृत अध्ययन किया है तथा अंजन की काजरी–75 तथा धामण की काजरी–78 नामक दो उन्नत प्रजातियॉ भी विकसित की है।

चारा घास की उत्तम किस्मों का चयन

विभिन्न स्थानों और स्रोतो से सकलित बहुवर्षीय चारा घासो के बीजो की किस्मे उगाकर उनका पौधो की ऊॅचाई, कल्ले फूटने की क्षमता, तना–पत्ती अनुपात, पौष्टिकता व खाद्यता आदि गुणो के आधार पर परीक्षण कर चयन किया गया। परीक्षण के आधार पर धामन की किस्म न.357 व 358, मोडा धामन की किस्म न.175 व 76, ग्रामना की

किस्म न 297, 333, करड की किस्म न 490, 491 और सेवण की किस्म नं 318 व 319 का शुष्क व अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रो मे बीजन के लिए चयन किया गया।

सूखा चारा उत्पादन की दृष्टि से धामन–357, मोडा धामन–175, ग्रामना–333, करड–491 और सेवण–319 मे क्रमश· 1 81, 1.07, 3.2, 3 5 और 2 5 टन प्रति हैक्टेयर औसत चारा उत्पादन पाया गया। दलहनी चारे मे सेम किस्म न.144, 158, 1462 व 1626 और अपराजिता किस्म न 752, 486, 1435 प्रमुख है। ये सभी किस्मे सूखा सहनशील, स्थिर, अधिक चारा व बीज उत्पादन वाली, शीघ्र पुनर्जनन व उत्तम अंकुरण वाली है।

हाल के वर्षों मे उपलब्ध घास की किस्मो के तुनात्मक परीक्षण और विकिरण उपचारित सेवण के बीजो से तैयार किस्मो को विस्तृत अध्ययन करने पर कुछ नई किस्मे चारे के लिए विकसित की गयी है। इनमे मारवाड अंजन (काजरी–75) किस्म 1985 मे निस्तारित की गयी। अजन की यह किस्म अधिक समय तक हरी रहने के साथ 3 2 टन प्रति हैक्टेयर सूखा चारा व 56 कि ग्रा. प्रति हैक्टेयर बीज का उत्पादन करती है। इसमें अपरिष्कृत प्रोटीन 9 से 12 प्रतिशत पाया जाता है। दूसरी किस्म मारवाड धामन (काजरी–76) भी वर्ष 1985 में बोने के लिए जारी हुई। इस घास की सूखा चारा उत्पादन क्षमता 2 28 टन प्रति हैक्टेयर तथा बीज उत्पादन 108 कि ग्रा. प्रति हैक्टेयर है। इसमें प्रोटीन 8–10 प्रतिशत है। तीसरी किस्म सेवण घास की काजरी–30–5 के नाम से वर्ष 1992 मे प्रचारित हुई। यह किस्म पतले तनो और अधिक पत्तियो की वजह से अधिक पौष्टिक है। इसकी सूखा चारा उत्पादन क्षमता 6 15 टन प्रति हैक्टेयर और बीज उत्पादन 26 कि ग्रा प्रति हैक्टेयर है। ग्रामना की काजरी–347 राष्ट्रीय स्तर पर 4.5 टन प्रति हैक्टेयर सूखा चारा व 105 कि ग्रा. बीज का उत्पादन दे रही है। दलहनी चारों में सेम (लबलब) 1258 तथा 40–10 क्रमश 2 2 तथा 1 9 टन प्रति हैक्टेयर सूखा चारा उत्पादन क्षमता के कारण उल्लेखनीय है। अपराजिता (*क्लाइटोरिया टरनेटिया*) की जारी 466 किस्म क्रमश· 9.4 व 3 0 टन प्रति हैक्टेयर हरा व सूखा चारा उत्पादित करती है। इसमे प्रोटीन की मात्रा 23 9 प्रतिशत है।

घासों को लगाने की विधि (बुवाई)

मरू क्षेत्रो मे घासों की बुवाई प्रायः जुलाई महीने में वर्षा प्रारम्भ होने पर की जाती है। बीज को 4 या 5 गुना गीली मिट्टी मे मिला कर गोलियॉ बनाकर बोया जाता है। बुवाई 50 से 75 से मी. के अन्तर से लाइनों मे करें और बीज के ऊपर कम से कम मिट्टी आनी चाहिये। सेवण और करड घास की बुवाई के लिये इनके बीज ऊमरे बना कर बोना ठीक रहता है। गोलियॉ बीज, चिकनी मिट्टी व गोबर की खाद क्रमशः 250 · 3500 : 250 ग्राम के अनुपात मे मिला कर बनाई जाती है। सेवण और करड़ घासें पुराने पौधो की कुछ जडें निकाल कर लगाने से भी अच्छी पनपती है। इनके अलावा बीज

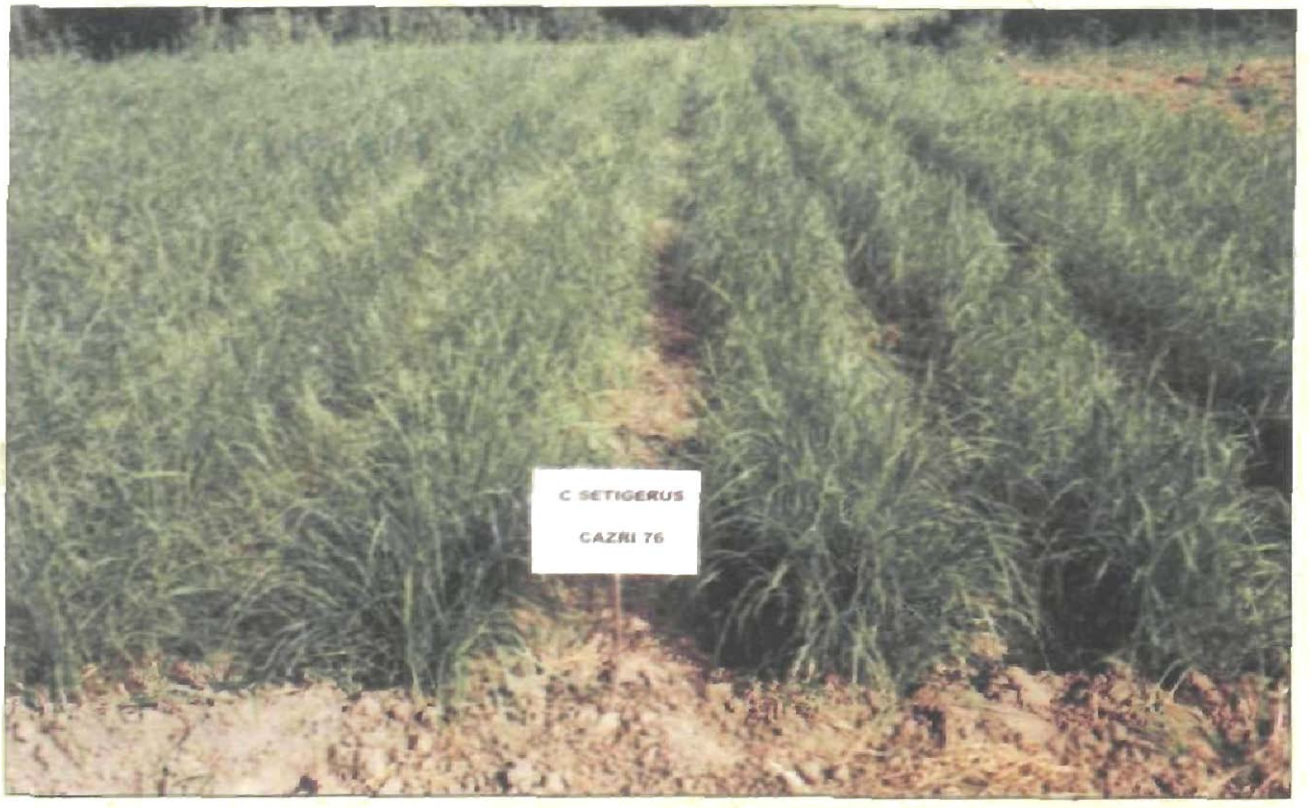

अधिक पौषकता वाली घास – मोडा धामण

उन्नत बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति द्वारा जल संरक्षण

द्वारा नर्सरी मे पौध तैयार करके वर्षा होने पर खेत मे रोपित किया जाकर भी चारे की बुवाई करने से चारागाह का विकास एक समान व अच्छा होता है।

चारा उत्पादन एवं चारागाह प्रबंधन

राजस्थान के शुष्क एव अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों मे पशुधन पर आश्रित किसान अधिक से अधिक गाय, भेड बकरी आदि पालते है। बढते हुए पशु सख्या के चराई दबाव के कारण तथा चारागाहो की उत्पादन क्षमता निरन्तर घटने से चारे के उत्पादन व मॉग मे अन्तर काफी बढ गया है चारागाहो की इस दुर्दशा एव असतुलन को रोकने के लिए सस्थान मे गत दशको के दौरान अनुसधान एव विश्लेषण के द्वारा ऐसी तकनीके विकसित की गई है, जिनको अपनाकर किसान तथा विकास कार्यों मे लगी सस्थाएँ भूमि सुधार एव चारा उत्पादन मे समुचित वृद्धि कर सकते है।

पशुओ की अति चराई के दबाव से चारागाह को मुक्त करने के लिए बाड लगाकर इसकी रक्षा की जा सकती है। अनेक प्रकार की बाडो का अध्ययन करनेपर पता चला कि लोहे की 6 फीट ऊँची कोणीय शलाखाओ पर कंटीले तार की 5 पंक्तियो वाली बाड अधिक प्रभावी रहती है किन्तु आरम्भ में यह बाड अधिक खर्चीली होने के कारण खाई व मेड बनाकर चारागाह या गोचर भूमि का बचाव करना होता है। धीर–धीरे झडबेरी या फोग या अरनी का प्रयोग कर वानस्पतिक बाड विकसित की जा सकती है। इस प्रकार गोचर भूमि को यदि पशु चराई से बचाया जा सके, तो तीन वर्ष के अन्दर ही गोचर भूमि मे चारा उत्पादन दो गुणा हो जाता है।

चारागाहो के क्रमिक विकास के लम्बे अध्ययन के बाद ये देखा गया कि उनमे उगने वाली वार्षिक और बहुवर्षीय घासो के उत्पादन में घटत व बढत विभिन्न वर्षों में होने वाली वर्षा के क्रम व औसत वर्षा के अनुरूप थी और यह भी देखा गया कि ऐसे चारागाहो से बहुवर्षीय घासो जैसे धामन, सेवण व करड की संख्या धीरे–धीरे कम होती गयी। अत बहुवर्षीय घासो के अनुपात को उचित स्तर पर बनाये रखने के लिए उचित चराई दर व रखरखाव आवश्यक है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों जैसे जैसलमेर मे देखा गया कि अक्सर कम वार्षिक वर्षा के कारण चारागाहो मे सेवण का बीज कोष खत्म होकर, काटी व अन्य खरपतवारो की वजह से बहुत कम उत्पादक रह गया। इसके विपरीत अधिक वर्षा (380 मि.मी. से अधिक) वाले क्षेत्रों में धामन घास की संख्या मे 5 गुणा वृद्धि हुई।

बीज गोलियाँ बनाने की मशीन

"काजरी" ने घास के बीज की गोलिया बनाने के लिए एक साधारण मशीन विकसित की है। इस मशीन को स्पोक (तीलियों) के द्वारा केन्द्र मे लोहे की धुरी पर पुल्ली व बॉल बियरिंग की मदद से स्थापित किया जाता है। धुरी के एक सिरे पर टायर को घुमाने के लिए एक हैंडिल लगाते है। इस मशीन को बनाने मे लगभग रूपये

3000 की लागत आती है। टायर मे बीज, मिट्टी व खाद का मिश्रण डालकर स्प्रे पम्प की सहायता से पानी का छिडकाव करके टायर को घुमाते हुए इच्छित आकार (4 5 मि.मी. मोटी) की गोलियां बनाकर धूप में सुखा लेते हैं। गोलियां मई या जून में वर्षा से पहले बनाकर सुखानी चाहिए।

अतिरिक्त भूमि–प्रयोग पद्धति

रेगिस्तानी क्षेत्रों मे पिछले दशक मे हुई अनियमित वर्षा और निरंतर सूखे की स्थितियो ने जोरदार तरीके से यह महसूस करने हेतु बाध्य किया है कि इस मृदा जलवायु क्षेत्र मे पेड और घास आधारित पद्धति से अधिक इच्छित स्थिर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता हैं। इस उद्देश्य हेतु वन चारागाह और कृषि चारागाह पद्धतियो को विकसित किया गया हैं। सीरीष (*एलबीजिया लब्बैक*), खेजडी (*प्रोसोपिस सीनरेरिया*) और इजराइली बबूल (*अकेसिया टोरटिलिस*) को चारागाह भूमि मे लगाने हेतु उपयुक्त पाया गया है। पक्तिबद्ध बुवाई मे मूग, मोठ और रेगिस्तानी घास (*सेंकरस सिलीयरिस*) और सेवण (*लेज्यूरस सिंडीकस*) को लगाना उपयुक्त पाया गया।

अन्य पद्धतियॉ जैसे कृषि–वनिकी, कृषि–उद्यानिकी और उद्यानिकी–चारागाह पर भी कार्य किए गए है। कुछ पेडो की जातियॉ जो कृषि–वानिकी हेतु आशाजनक लगी है वे खेजडी (*हार्डवीकिया बीनाटा, प्रोसोपिस सीनरेरिया*), (होलोप्टीलिया इन्टेग्रीफोलिया) और सीरीष (*एलबीजिया लब्बैक*) है। सेवण घास (*लेज्यूरस सिडीकस*) की पक्तियो के बीच फलो के पेड लगाकर उद्यानिकी–चारागाह पद्धति मे, जैसलमेर की स्थितियो मे बहुत ही आशाजनक परिणाम रहे। प्रारभिक अन्वीक्षा मे यह प्रकट हुआ कि यह घास पानी और पोषक तत्वों हेतु पेडों से स्पर्द्धा नहीं करती हैं। इसके विपरीत इस पद्धति में पानी का अच्छा प्रयोग होता है क्योंकि फलो के पेडों को दिए गए अतिरिक्त सिचाई जल का प्रयोग लाभदायक रूप से घास द्वारा किया जाता है।

आर्थिक महत्व के पौधे

शुष्क क्षेत्रो की अर्थव्यवस्था मे आर्थिक महत्व के पौधो का विशिष्ट स्थान है। वर्षा की कमी एवं अनियमितता के कारण सामान्य फसलो के बारे मे अनिश्चितता बनी रहती है। सूखे एव प्राकृतिक विपदाओ के समय शुष्क क्षेत्र का किसान ईंधन, पशुओ के लिए चारा और स्वयं के भोजन के लिए स्थानीय पौधों पर निर्भर रहता है। मरूस्थलीय वनस्पति मे बहुत से ऐसे पेड–पौधे पाये जाते हैं, जिनसे औद्योगिक अथवा औषधीय महत्व के उत्पाद प्राप्त किये जा सकते है। "काजरी" में सघन अनुसंधान से अनेक आर्थिक महत्व के पौधो को चिन्हित किया गया है।

हिंगोट (*बैलानाइटिस रौक्सबरगाई*) से डायोस्जेनिन एवं वनस्पति तेल

हिगोटा के फलों को डायोस्जेनिन एव वनस्पति तेल का एक अच्छा स्रोत पाया गया है। पश्चिमी राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो से एकत्रित किये गये फलो मे 0.4 प्रतिशत से 3 7 प्रतिशत तक गूदे पर आधारित मात्रा मे डायोस्जेनिन पायी जाती है, जो अनेक औषधियों के निर्माण मे एकमात्र पूर्वगामी पदार्थ है। देश मे इसे अनेक स्टीरायड हारमोन एव भक्ष्य गर्भ निरोध औषधियो के उत्पादन मे उपयोग मे लाया जाता है। डासोस्जेनिन जो गर्भ निरोधक औषधियो मे और स्टीरिओड हारमोन्स मे एक प्रमुख कच्चा माल है, यह हिंगोटा (*बेलानाइटिस रौक्सबरगाई*) की जडो (0 81–1 47 प्रतिशत) एव फलो (1 8–2 9 प्रतिशत) से निकाला गया।

मैक्सिकन थोर (*यूफॉर्बिया एन्टिसिफिलिटिका*) से कैन्डेलिला मोम

मैक्सिकन थोर से लगभग 4 प्रतिशत मात्रा मे शुष्क भार आधारित कैन्डेलिला मोम प्राप्त किया गया है। कैन्डेलिला मोम का भारत मे उत्सफोटकों के निर्माण के अन्तिम चरण मे उपयोग करने के लिए आयात किया जाता है। इस मोम का उपयोग पॉलिश, चर्वण निर्यास आदि में भी किया जा सकता है। यह थोर पश्चिमी राजस्थान मे भली–भॉति उपजाया जा सकता है। संस्थान मे निकाले गये मोम के नमूने को उत्सफोटक उत्पादन मे उपयोग हेतु कार्डाइट फैक्ट्री, नीलगिरी द्वारा उपयुक्त पाया गया है।

कुमट से गोंद

कुमट (*अकेसिया सेनेगल*) मरू प्रदेश मे पाया जाने वाला एक जाना माना बहुउपयोगी वृक्ष है। कुमट की फली एव इसके बीज को भोजन मे स्वादिष्ट सब्जी की तरह उपयोग किया जाता है। इसके पत्ते पशुओ के लिए चारे के रूप मे काम आते है

एवं लकडी का उपयोग ईंधन के अतिरिक्त कृषि उपयोगी सयंत्रों के हत्थे आदि बनाने में होता है। कुमट की शाखाएँ घनी एव काटेदार होती है। इसलिए इसको खेतो के चारो ओर बाड की तरह लगाने से फसल की सुरक्षा भी होती है।

कुमट, औषधीय गुणो से युक्त बहुमूल्य गोंद, (*गम–अरेबिक*) का महत्वपूर्ण स्रोत है। हमारे देश मे कुमट के पेड़ राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश एव हरियाणा के शुष्क क्षेत्रों मे बहुतायत में पाये जाते हैं परन्तु प्राकृतिक रूप मे इन पेडों से गोद बहुत कम मात्रा मे ही प्राप्त होता है जबकि सूडान इस गोद का मुख्य निर्यातक देश हैं। कुमट से प्राप्त होने वाला यह गोंद औषधि उद्योग के अतिरिक्त, कपडा, कागज, चर्वण निर्यास, सौन्दर्य सामग्री, खाद्य पदार्थ इत्यादि उद्योगों मे भी प्रचुर मात्रा मे उपयोग किया जाता है। इसी कारण विभिन्न उद्योगों मे उपयोग के लिए प्रतिवर्ष इस गोंद का भारी मात्रा में आयात किया जाता है। कुमट के पेडो से अधिक मात्रा में गोंद प्राप्त करने की दिशा में काजरी जोधपुर मे अनुसधान किया गया है तथा कुमट से अधिक मात्रा मे गोंद प्राप्त करने की तकनीकी विकसित की गई है। इस तकनीक से एक वृक्ष से एक किलोग्राम से भी अधिक मात्रा मे गोद प्राप्त किया जा सकता है।

कुमट से अधिक मात्रा में गोद प्राप्त करने की तकनीक बहुत ही साधारण है कुमट के पेड के तने मे समुचित ऊँचाई पर लगभग 1.5 से.मी व्यास एव 5 से.मी. गहराई का एक छेद किया जाता है। इस छेद मे प्लास्टिक की सिरिन्ज से निश्चित सादता का 4 मि.ली. गोद उत्प्रेरक (इथोफोन) घोल (780 मि.ग्रा. सक्रिय तत्व (4 मि.मी घोल में) डाल दिया जाता है। तत्पश्चात् छेद को साफ की हुई चिकनी मिट्टी के लेप द्वारा बाहर से बन्द कर दिया जाता है। इसके उपरान्त पेड पर कहीं किसी तरह का घाव नहीं किया जाता है। यदि पर्यावरणीय परिस्थितियां अनुकूल हो तो शीघ्र ही चार या पांच दिनो में उपचारित पेडों पर जगह–जगह से गोंद का रिसाव आरम्भ हो जाता है जब गोद सूख कर कडा हो जाता है तो इसे इकट्ठा कर लिया जाता है। इस गोद को भारतीय फार्मोकोपिया मे दिये गये मापदण्डो के अनुरूप पाया गया है।

निश्चय ही कुमट से अधिक मात्रा मे गोंद प्राप्त करना पश्चिमी राजस्थान के किसानो के लिए एक अच्छी अतिरिक्त आमदनी का साधन साबित हुआ है। इससे न केवल क्षेत्रीय ग्रामीणो की आर्थिक दशा मे सुधार अपितु क्षेत्रीय लोग इस बहुउपयोगी वृक्ष के सरक्षण एव इसकी पैदावार बढाने के लिए भी प्रेरित हो रहे है।

यूक्लिप्टस विरिडिस से उपयोगी तेल

आस्ट्रेलिया से प्राप्त बीजो से जोधपुर मे उगाये गये यूक्लिप्टस विरिडिस की पत्तियो से रग रहित उत्पत तेल प्राप्त किया गया है। इस तेल मे 93 प्रतिशत मात्रा मे सीनियोज उपस्थित पाया गया है, जो कि औषधीय उपयोग के लिए निर्धारित मात्रा (70 प्रतिशत) से कही अधिक है।

सोनामुखी (*कैशिया एंगस्टिफोलिया*) से सेनोसाइड

सोनामुखी औषधीय महत्व का पौधा है और इसका विदेशो को निर्यात होता है। जोधपुर मे उपजाये गये सोनामुखी की पत्तियो मे 3 से 48 प्रतिशत मात्रा तक सेनोसाइड प्राप्त किया गया है, जो ब्रिटिश फार्माकोपिया की निर्धारित 25 प्रतिशत की मात्रा से अधिक है।

रोशा घास (*सिम्बोपोगान मार्टिनी किस्म मोतिया*) से उत्पत तेल

रोशा घास के उत्पत तेल की सुगधि–उद्योग मे अत्यधिक मॉग है। इस तेल मे जरेनियोल नामक यौगिक अधिक पाया जाता है। जोधपुर मे उपजाये गये रोशा घास के पौधों से प्राप्त किया गया उत्पत तेल भारतीय मानक सस्थान के निर्धारित मापदण्ड के अनुरूप पाया गया है।

सस्थान के परिसर मे अन्य आर्थिक महत्व के पौधे जैसे होहोबा (*साइमोन्डसिया चाइनेनसिस*), गुआयुले (*पार्थिनियम अरजन्टेनम*), धावडा (*एनोगिसस रोटन्डिफोलिया*), गुगल (*कामीफोरा वाइटिई*), सलाई (*बोस्वेलिया सेराटा*) आदि भी लगाये गये है।

आर्थिक महत्व के अन्य रेगिस्तानी पौधेः उद्योगो और मेडिसिन मे महत्व के पौधो मे स्थित तत्वो के सार को पहचानने और प्रयोग की सभावनाओ का पता लगाने के लिए अध्ययन किए गए इनमे सम्मलित है जोजोबा (*साइमोन्डसिया चाइनेन्सिस*), हिगोटा (*बेलानाइटिस राक्सबरगाई*), गुगल (*कोमीफोरा वाइटी*), थोर (*यूफोरबिआ एन्टीसिफलिटिका*) और लाना (*हैलोक्सिलोन*) आदि। जोजोबा के बीजो से निकाला गया तेल व्यवसायिकतः बहुत मूल्यवान है। *अरटेमीसिआ स्कापारिआ* (0 91 प्रतिशत उपज) से निकाला गया स्कोपोरोन की हाइपोटिन्सव और ट्रान्सक्यूलिजिगएजेट में प्रयोग अभी परिक्षणाधीन है। *अरटीमीसिआ* से पॉच प्रकार के फ्लोवोनोड्स निकाले गए और आगे अध्ययन जारी है। अन्य रेगिस्तानी पौधो जैसे जोजोबा (*ल्यूबरीकेटीव आइल*) और गायूले (रबड के लिए) को यहॉ अपनाने पर अध्ययन प्रगति पर है।

औषधीय महत्व के पौधेः पश्चिमी राजस्थान मे अनेकानेक प्रकार की वनौषधि सम्पदा पायी जाती है। इसी को ध्यान मे रखते हुए इस संस्थान मे विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधो के सर्वेक्षण उत्पादन एवं विस्तार के लिये कार्य प्रारम्भ किया है। इन औषधीय पौधो का विभिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धति में प्रमुख स्थान है। विभिन्न प्रकार की औषधियो के निर्माण एव घरेलू चिकित्सा मे काम आने वाले पौधो की लगभग 70 प्रजातियॉ संस्थान में अध्ययन हेतु लगायी गयी है। प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले मुख्य औषधीय पौधे इस प्रकार है गिलोरा (*टीनोस्पोरा कोर्डिफोलिया*), उंधा कॉटा (एकीरेन्थस एस्परा), हजार पाना (*फाइलेन्थस फ्रेर्टनस*), धतूरा (*डेट्रा*), काला धतूरा (*आर्जिनिया इन्डिका*), जंगली प्याज, (*बारलेरिया एकेन्थोइडिस*), बज्रदन्ती (*आडाथोत वसाका*) (अडूसा), (*बोरहाविया डिफूयजा*), पुर्ननवा आदि।

शुष्क उद्यानिकी

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसधान संस्थान मे उद्यानिकी अनुसधान का आरम्भ 1972 में हुआ। शुष्क क्षेत्र की जलवायु की विषमता तथा पानी की उपलब्धता के आधार पर किन–किन फल वृक्षो को बिना पानी के, किन–किन को पूरक पानी देकर तथा किन–किन को पर्याप्त पानी की सुविधा होने पर सफलतापूर्व उगाया जा सकता है। इन्ही प्रश्नों का समाधान खोजने हेतु इस संस्थान मे बेर, अनार, खजूर, ऑवला, बेल, करौदा, सीताफल, कैर व गूदा जैसे फल वृक्षो पर अनुसधान कार्य प्रारंभ किया गया। पिछले चार दशकों मे विभिन्न फल वृक्षो पर किये गये अनुसंधान द्वारा इस क्षेत्र मे बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धियॉ अर्जित की गयी है। इनमें से कुछ तकनीके वृहद स्तर पर किसानो द्वारा अपनायी जा चुकी है

बेर

सूखे से मुकाबले की रणनीति के तहत बेर की खेती का महत्वपूर्ण योगदान है। यह एक बहुउपयोगी फल वृक्ष है जिसके विभिन्न भागों का आर्थिक उपयोग होता है। पौष्टिक फलों के अलावा इसकी पत्तियॉ पशुओं के लिये एक उत्तम किस्म का चारा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त इसमे प्रति वर्ष होने वाली कटाई–छटाई से उपयोगी कॉटेदार झाडियॉ प्राप्त होती है। जिनका उपयोग बाड बनाने व भण्डारित चारे की सुरक्षा के लिये किया जाता है।

उन्नत किस्मों का चयन

उन्नत बेर की 300 से भी अधिक किस्मे विकसित हो चुकी हैं लेकिन सभी किस्में बारानी क्षेत्रो विशेषकर कम वर्षा वाले क्षेत्रो के लिये उपयुक्त नही हैं। ऐसे क्षेत्रों के लिये अगेती व मध्यम समय मे पकने वाली किस्मे ज्यादा उपयुक्त पाई गई है। अगेती किस्मे (गोला, काजरी गोला, मूण्डिया) दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे पकना प्रारम्भ होकर पूरे जनवरी माह तक उपलब्ध रहती है। मध्यम किस्मो (सेव, कैथली, छुहारा, दण्डन) के फल मध्य जनवरी से मध्य फरवरी तक पकते है। देर से पकने वाली किस्मे मध्य फरवरी से मार्च के अन्त तक उपलब्ध रहती हैं, उदाहरण – उमरान, इलायची, टीकडी इत्यादि।

बेर की खेती का आर्थिक विश्लेषणः शुष्क क्षेत्रों में बार–बार पड़ने वाले सूखे (अकाल) से मुकाबले के लिए बेर की बागवानी एक बहुआयामी सुरक्षा कवच साबित हुई है इसी वजह से बेर की खेती अकाल के विरूद्ध एक बीमा की तरह है क्योकि कम व

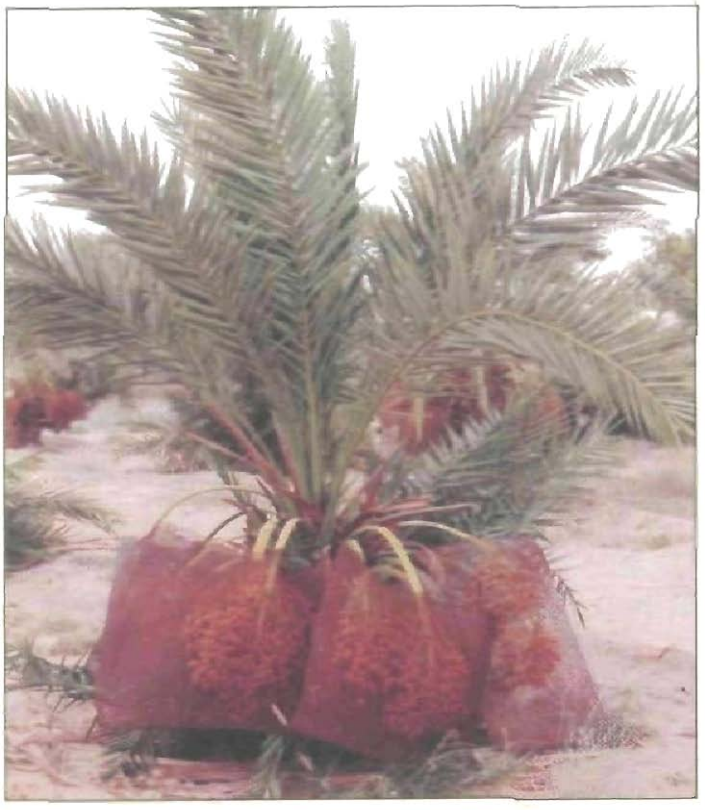

शुष्क क्षेत्रों में खजूर की उपयुक्त खेती

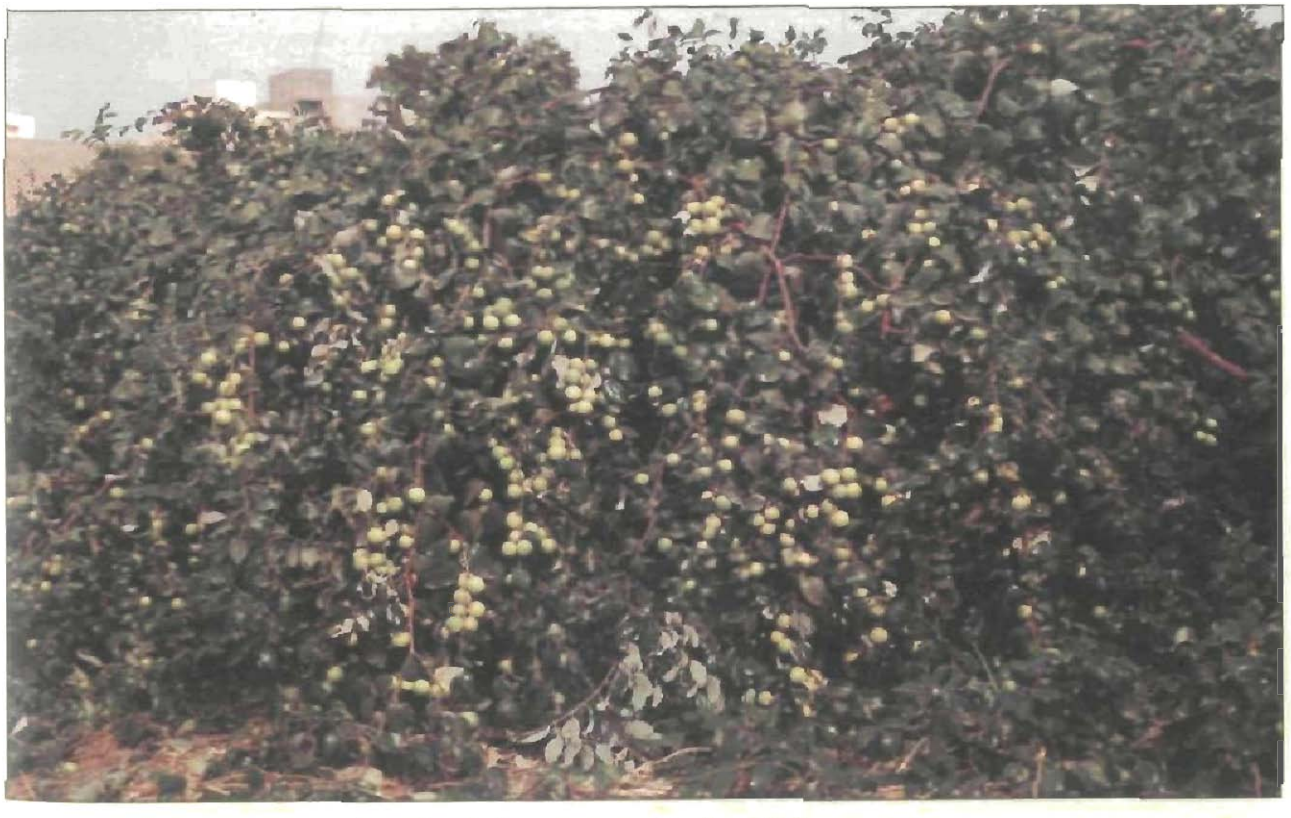

बेर की खेती : अकाल में भी सुनिश्चित आय

अनियमित वर्षा मे यहाँ खरीफ फसलें अक्सर असफल हो जाती है। ऐसी स्थिति मे भी बेर से कुछ न कुछ आमदनी जरूर मिलती है।

बेर की बागवानी न केवल सिंचित अवस्था में फायदे का सौदा है बल्कि बारानी अवस्था मे भी बहुत अच्छी आय देती है। इस प्रकार बेर की बागवानी अपना कर लगभग 58000/– रूपये (सिंचित अवस्था) तथा 25,000/– रूपये (बारानी अवस्था) प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष आमदनी कर सकते हैं।

बेर की खेती बारानी अवस्था मे भी बहुत फायदेमंद है, फलो के अलावा सूखी जलाऊ लकडी, पत्तियो का चारा तथा कांटेदार शाखाएँ अतिरिक्त आमदनी का साधन है। इसकी खेती वर्ष के अधिकाश समय मे रोजगार के अवसर पैदा करती है। अगर बेर की खेती सिचित अवस्था मे की जाये तो सकल व शुद्ध आय दोनों करीब दुगनी हो जाती है। अगर हम वर्ष 2002 के सूखे को देखे तो बेर की गोला किस्म ने उस वर्ष भी 11 किलाग्राम प्रति पेड फल उत्पादन दिया जिससे कम से कम 8–10 हजार रू. प्रति हैक्टर की शुद्ध आय अर्जित हुई है। इस तरह बेर की खेती सूखे से लडने के लिये एक वरदान है।

अनार

बेर की तरह अनार भी शुष्क क्षेत्र मे उगाया जाने वाला प्रमुख फल है। इसकी लगभग 40 प्रजातियों को भिन्न–भिन्न स्थानो से एकत्रित कर उनका स्थानीय परिस्थितयो मे परीक्षण किया गया। जालोर बेदाना किस्म के पौधे सदाबहार होते है। इसके फल बडे आकार (250–300 ग्राम) के, मुलायम बीजयुक्त होते है। इस किस्म के फल लाल गुलाबी रग के मीठे व खुशबूदार होते हैं इसके दाने लाल रंग के होते हैं, जिनमे 50–55 प्रतिशत तक रस होता है। यह किस्म खारी मिट्टी व खारे पानी मे उगायी जा सकती है। औसत उपज 25–30 कि.ग्रा. प्रति पौधा है।

जोधपुर के आस–पास के क्षेत्रो मे जोधपुर रेड नामक किस्म काफी लोकप्रिय है लेकिन इसके बीज कडे होते है तथा इसके 70–80 प्रतिशत फल कट भी जाते है।

फूल आने के 4–4.5 महीने बाद फल तोडने योग्य हो जाते है। फलो की तुडाई उस समय की जानी चाहिये जबकि फलो का रंग हल्का पीला होने लगे और पनु गुलाबी से लाल हो जाय। एक पूर्ण विकसित पेड से लगभग 25–30 कि ग्रा. तक फल मिल जाते है। शुष्क क्षेत्रमे फलो की तुडाई नवम्बर के अन्तिम सप्ताह से लेकर मार्च के अन्त तक की जाती है।

ऑवला

बेर व अनार के बाद, ऑवला शुष्क क्षेत्र मे पनपने वाला एक प्रमुख फल वृक्ष है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सूखे को सहन करने के साथ खारे पानी व खारी जमीन में बहुत ही सरलता पूर्वक उगाया जा सकता है। यह 10 से अधिक

पी एच. मान वाली मिट्टी मे भी उगाया जा सकता है। विभिन्न प्रजातियो के मूल्याकन के बाद यह पता चला है कि कचन, कृष्णा, नरेन्द्र ऑवला–7, चकैया तथा फ्रासेस बनारसी किस्मे इस क्षेत्र के लिये उपयुक्त है। इसके फल औषधि के रूप में भी प्रयोग किये जाते हैं।

इनके फलों की वृद्धि वर्षा आरम्भ होने के साथ–साथ शुरू होती है, तथा शुष्क मौसम आने से पूर्व ही तोड लिया जाता है। राजस्थान मे इसकी खेती सभी जिलो मे की जा सकती है। ऑवले का फल विटामिन "सी" का बहुत बडा श्रोत है। इसके 100 ग्राम गूदे मे 400–700 मिलीग्राम विटामिन "सी" पाया जाता है। इसके अलावा ऑवले मे 81.2 प्रतिशत जल, 14 1 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0 5 प्रतिशत प्रोटीन, 0 1 प्रतिशत वसा व तथा विभिन्न खनिज लवण जैसे केल्सियम, फॉस्फोरस तथा लोहा काफी मात्रा में पाया जाता है।

बेल

ऑवला की तरह बेल भी एक औषधीय समूह का पौधा है। इसके फल गर्मियो मे पककर तैयार होते है तथा स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक होते हैं। विभिन्न प्रजातियो के मूल्यांकन के आधार पर लालजीत साम्भपुरी, फैजाबादी देशी, "काजरी" चयन किस्मे यहाँ के लिए उपयुक्त पायी गयी है।

खजूर

जैसलमेर स्थित "काजरी" के प्रादेशिक शोध केन्द्र के चान्दन शोध स्थल पर वर्ष 1978 मे सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय खजूर शोध केन्द्र कोचीकेला (केलीफोर्निया) से हलावी प्रजाति के पौधे प्राप्त कर लगवाये गये व उसके पश्चात अरब व मध्य पूर्व के देशों की अच्छी किस्मे जिनमें मुख्य रूप से सामरान, खदरावी, मेदजूल, जहिदी व अन्य किस्मो के पौधे लगाकर खजूर की खेती के विभिन्न पहलुओ पर शोधकार्य चल रहा है जिसके सफल परिणाम निकले हैं। खजूर की 20 प्रजातियों को इस संस्थान मे लगाया गया है। खजूर विभिन्न किस्मो के मूल्यांकन के बाद यह पाया गया कि हलावी नामक किस्म इस क्षेत्र के लिये सबसे उपयुक्त रहती है। यह अगेती पकने वाली प्रजाति है, जिसके फल वर्षा आरम्भ होने से पहले ही पककर तैयार हो जाते है।

पौध स्थापन के पांचवे वर्ष में प्रति पौधा औसतन 50 किलोग्राम पिड खजूर प्राप्त किये जा सकते है। व्यवस्थित तरीके से 8 x 8 मीटर की दूरी के हिसाब से प्रति हैक्टर 144 पौधे लगाये जा सकते है। जिनसे प्रति पौधा 50 किलोग्राम औसतन पैदावार के हिसाब से 72 क्विटल फल मिल जाते है। पिड खजूर का बाजार भाव लगभग 30 रूपये प्रति किलो है परन्तु 20 रूपये प्रति किलोग्राम के भाव से भी 1,44,000 रूपय प्रति हैक्टेयर आय संभव है। इतनी आय वर्तमान मे रेगिस्तान में किसी भी फसल से मिल

पाना संभव नही है। रेगिस्तान मे नहरी क्षेत्रों में खजूर की खेती से एक तरफ जहॉ जल रिसाव व दलदल पन से निजात मिलेगी तो दूसरी तरफ करोडो रूपये के फल प्राप्त होने की प्रचुर संभावना है।

कैर

शुष्क क्षेत्र के विभिन्न स्थानो से लगभग 20 प्रकार के संकलन एकत्रित किये गये है तथा इनका मूल्याकन किया जा रहा है। कैर के सूखे फलो में भण्डारण के दौरान लगने वाले कीडो पर अनुसधान किए जा रहे हैं।

गूंदा

यह राजस्थान प्रदेश का मूल देशज है। इसके वृक्ष पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे भी पाये जाते है। कडी धूप को सहन करने की क्षमता रखने वाले इस वृक्ष को वायुरोधक के रूप मे भी काम मे लिया जाता है। विभिन्न स्थानो पर सर्वेक्षण करके लगभग 20 सकलनो को इक्कट्ठा किया गया तथा उसका मूल्यांकन किया जा रहा है। अगेती फल लेने के लिय जनवरी के मध्य मे पत्तों को गिरा देना चाहिए।

करौंदा

राजस्थान व महाराष्ट्र के पहाड़ी क्षेत्रो का गहन सर्वेक्षण करके लगभग 27 उप प्रजातियो का सकलन तथा मूल्यांकन किया गया। इन में काफी आनुवाशिकी भिन्नता पायी गयी। इसके फल सफेद, गुलाबी, गहरा लाल तथा गुलाबी रग लिये हुये होते है। फलो के आकार मे भी विभिन्नता पायी गयी।

सीताफल

इस फल वृक्ष के सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन का कार्य हाल ही मे प्रारम्भ हुआ है। सर्वेक्षण के आधार पर सीताफल उगाये जाने वाले क्षेत्रों मे इसके फलों में बहुत ही आनुवांशिक विभिन्नताये पायी गयी। कुल 13 प्रकार के सीताफल इक्कट्ठा करके उनका मूल्याकन किया गया तथा यह पाया गया कि बालानगर और चित्तौडगढ देशी किस्मे इस क्षेत्र के लिये उपयुक्त है।

मरू क्षेत्रों हेतु सिफारिश की गयी फल वृक्षों की उन्नत किस्में

फल का नाम	सिफारिश की गयी उन्नत किस्में
बेर	गोला, मुण्डिया, सेव, उमरान
अनार	जालोर बेदाना, जी–137, गणेश
ऑवला	कचन, कृष्णा, चकैया
बेल	लालजीत, साम्भीपुरी, काजरी चयन, धारारोड व फैजाबादी देशी
खजूर	हलावी, शामरान, खदरावी मैदजूल

ग्वारपाठा की खेती एवं औषधीय उपयोग

ग्वारपाठा (*ऐलो वेरा*) जिसे धृतकुमारी या मुसव्वर भी कहते हैं एक महत्पूर्ण परम्परागत औषधीय पौधा है। यह एक उष्णकटिबधीय बहुवर्षिय पौधा है जिसकी कम वर्षा वाले क्षेत्रो में खेती की जा सकती है। इसका कई औषधीय व प्रसाधन उत्पादो मे प्रयोग किया जाता है, फिर भी इसकी क्षमता का फायदा नही उठाया जा रहा है ग्वारपाठा कॉस्मेटिक उद्योग मे प्रयोग होने वाले कई रासायनिक घटको का बेहतरीन विकल्प बन कर बढते उपभोक्ता उत्पाद क्षेत्र में अपनी जगह बना रहा है। इसका प्रयोग क्रीम, लोशन, शैपू, त्वचा टॉनिक आदि बनाने मे किया जाता है। परम्परागत रुप से इसका प्रयोग मूत्र रोग, मुंहासा, त्वचा रोग, अल्सर इत्यादि के ईलाज के लिए किया जाता रहा है। इसका प्रयोग बड़े पैमाने पर रेचक व मोटापा घटाने वाली दवाओ मे किया जाता है। ग्वारपाठा मे व्यापक अनुकूलन क्षमता है और यह विभिन्न तरह की जलवायु मे उगाया जा सकता है। यह 50–300 मी मी. वार्षिक वर्षा क्षेत्रो मे भी उगते हुए देखा जा सकता है। मानव शरीर के लिए आवश्यक ऐसे 8 अमिनो अम्ल जो शरीर स्वयं संश्लेषित नही कर पाता है, उनमे से 7 प्रकार के अमिनो अम्ल ग्वार पाठा में पाए जाते है। जैविक रूप से सक्रिय यह सभी तत्व पत्ती के तीन हिस्सो मे पाये जाते है।

ऐलो वेरा पाचन तत्र सबधी अनेक बीमारियो में औषधि रूप मे काम आता है। यह मुख्य रूप से इरिटेबल बॉवल सिन्ड्रोम, अल्सेरटिव कालाइटिस, क्रहोन्स डिजीज, पेप्टिक अल्सर तथा मुँह के छालों मे उपयोगी प्रभाव दिखाता है। ऐलो जेल रोग प्रतिरोधक क्षमता मे वृद्धि करने मे सहायक है, यह यकृत की कार्यप्रणाली को भी सुचारू रूप से चलाने मे सहायक है। यह शरीर में सूजन, अल्सर, मधुमेह और उच्च रक्त चाप को रोकने और नियंत्रित करने मे सहायक है।

पौध प्रवर्धन

बेरः बेर का पौधा आंख चढाकर तैयार किया जाता है। इसके लिये बेर की गुठली तोडकर उससे प्राप्त मीजी (गिरी) को अप्रैल के महीने मे खाद व मिट्टी के मिश्रण से भरी पॉलीथीन की थैलियो में बुवाई करते हैं। ये पौधे जुलाई तक आख चढाने योग्य हो जाते हैं। आख चढाने के 25–30 दिन बाद ये पौधे खेत मे लगाने योग्य हो जाते हैं। बेर का पौधा तैयार करने की संस्थान द्वारा विकसित विधि बहुत ही आसान है। इस विधि के आधार पर कई निजी पौधाशालाए स्थापित हुई है तथा इन पौधशालाओं द्वारा पूरे देश मे लाखो की संख्या मे बेर के पौधे भेजे जा रहे है।

अनारः अनार के पौध कलम तैयार किये जाते है। इसके लिये 9 इंच लम्बी टहनी लेकर उसे 250 पी.पी.एम. इन्डोल ब्यूटारिक एसिड के सान्द्रण मे 15 घन्टे तक डुबोने के बाद नर्सरी की क्यारी मे लगाये जाने पर 70–80 प्रतिशत सफलता मिलती है। कलम लगाने का सबसे उपयुक्त समय 15 फरवरी से 5 मार्च तक आंका गया है। अप्रैल से जून तक

कलम नही लगाना चाहिये। कलम् लगाने के 4–5 महीने बाद पौध खेत मे लगाने योग्य हो जाते है।

आँवला: ऑवला के पौधे भी बेर की तरह ही तैयार किये जाते हैं। इस पर आख चढाने का काम जुलाई से सितम्बर तक उपयुक्त पाया गया है। इसके लिय देशी ऑवले के बीज को निकाल कर उसे पॉलीथीन की थैलियों मे बुवाई करते हैं तथा 5–6 महीने के बाद ये पौधे आंख चढाने योग्य हो जाते हैं।

बेल: बेल के पौधे भी आंख चढ़ाकर तैयार किये जाते हैं। मूलवन्त तैयार करने तथा इस पर आंख चढाने का उपयुक्त समय जुलाई–सितम्बर पाया गया है।

खजूर: खजूर के पौधे भू–स्तारी द्वारा तैयार किये जाते है। जब पौधे 5–6 वर्ष पुराने हो जाते हैं तो उसमें से छोटे–छोटे ऑफ शूट (पार्श्व शाखा) निकलते हैं। इन्हें उसके मातृ पौधे से निकालकर उपयुक्त स्थान पर लगाया जाता है।

केर: केर के पौधे अनार की तरह कलम के द्वारा तैयार किये जाते है। इसके लिये 2500 पी.पी.एम. के इन्डाल ब्यूटायरिक एसिड के सान्द्रण मे 9" लम्बी कलम काटकर जुलाई के महीने मे लगाने से काफी अच्छी सफलता प्राप्त हुई है।

फल व तकनीकी उद्यान

उद्यानिकी खण्ड में शुष्क क्षेत्रो के लिए उपयुक्त विभिन्न फल वृक्षों पर अनुसधान कार्य किया जा रहा है। यहॉ पर मुख्य रूप से बेर, आंवला, खजूर, बेल पत्र, गून्दा, करोन्दा, फालसा, अनार, केर, गून्दी इत्यादि की विभिन्न किस्मों के पेड पौधे लगे हए है। वर्तमान मे यहॉ पर करोन्दा, गून्दा व बेल पत्र के जीव द्रव्य मे सुधार करके उन्नत किस्मे विकसित करने पर जोर दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वृहद बीज परीयोजना के अन्तर्गत विभिन्न फलदार पेड पौधोंकी रोपण सामग्री के उत्पादन करने के लिए पौधशाला बनी हुई है जो कि उन्नत किस्म के फलदार पौधे किसानों को लागत मूल्य पर उपलब्ध कराती है। यहॉ पर एक बहुत बडे क्षेत्रफल में बेर का एक फार्म है जिसमे यह दर्शाया गया है कि कैसे केवल वर्षा पर निर्भर रहते हुए भी बेर से अच्छी खासी आमदनी ली जा सकती है। इस उद्यान के 40 वर्ष पुराने पेड की उत्पादकता बनी हुई है। तकनीकी उद्यान मे सस्थान द्वारा विकसित मुख्य प्रौद्योगिकी का जीवत प्रदर्शन किया गया है इसके एक भाग मे वर्षा जल सग्रहण के लिए 3 लाख लीटर क्षमता के टांके का निर्माण किया गया है। इस टांके में सग्रहित जल का सौर ऊर्जा द्वारा लिफ्ट करके बून्द–बून्द सिंचाई पद्धति से फलदार पौधो मे सिचाई की जा रही है। फलदार पौधों मे बेर, आंवला व अनार की चार–चार उन्नत किस्मो का प्रदर्शन किया गया है। तकनीकी उद्यान के एक तिहाई भाग मे शुष्क क्षेत्रो के लिए उपयुक्त विभिन्न तरह के औषधीय पौधो का जीवत प्रदर्शन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें बेर के साथ दलहनी फसलो जैसे मूंग व ग्वार का प्रदर्शन भी किया गया है।

पशुधन प्रबन्धन

मरू क्षेत्रो की आर्थिकी में पशुपालन व्यवसाय एक बहुत ही महत्वपूर्ण भाग अदा करता है चूँकि यहॉ पर कृषि वर्षा आधारित है अतः पशुपालन ही यहॉ के लोगो की आजीविका का स्थायी स्रोत है।

क्षेत्र मे प्रमुख गौ वश मे थारपारक, राठी, सिधी, नागौरी तथा कांकरेज नस्ल की गायें पायी जाती है। भैसो मे मुख्यत मुर्रा व मेहसाना नस्ले पायी जाती है। राजस्थान मे कुल पायी जाने वाली 8 भेडो की नस्लो में से मरू क्षेत्र में 6 नस्ले चौकला (जिसे शुष्क क्षेत्र की मैरीनो कहा जाता है), मगरा, मारवाडी,नाली, पूंगल व जैसलमेरी पायी जाती हैं। मारवाडी नस्ल की बकरिया इस उष्ण प्रदेश के लिए बहुत उपयुक्त हैं। परन्तु इनमे प्रति पशु दूध का उत्पादन कम होता है। इस नस्ल को मुख्यतः मॉस उत्पादन के लिए काम मे लिया जाता है। दूध उत्पादन के लिए श्रेष्ठ परबतसर व झकराना किस्मे इसी क्षेत्र की देन है।

मरूस्थलीय पशुओं में जलवायु अनुकूलन क्षमता

शुष्क गर्म वातावरण में सामान्यतया पशु अपने शरीर के भार के हिसाब से सर्दी, बसत, गर्मी और वर्षा पश्चात् क्रमश 7–8 प्रतिशत, 12–13 प्रतिशत, 15–16 प्रतिशत और 12–13 प्रतिशत की दर से पानी का प्रयोग करता है। भारतीय मरूस्थल मे भेड, बकरी और गधो में कम पानी उत्सर्जन की दर पायी गई। यह दर मारवाडी बकरी में निम्नतम व गधे मे उच्चतम थी, जबकि मारवाडी भेड की दर इन दोनों पशुओं के बीच की थी। मरूस्थलीय भेड, बकरी व गधे मे शरीर के कम पानी उत्सर्जन की दर और तापीय भार मे सकारात्मक सम्बंध देखा गया। पशुओ के अध्ययन से जानकारी मिली कि मारवाडी भेड को मारवाडी बकरी की तुलना में 17 प्रतिशत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। राजस्थान के मरूस्थल की परबतसर बकरी भी मारवाड़ी भेड के समान अधिक पानी का प्रयोग करती है।

बकरियों की मरूस्थलीय जलवायु अनुकूलन

अध्ययन से यह पाया गया कि बीटल व जमनापारी बकरियां मरूस्थलीय उष्ण वातावरण को साधारणतया न केवल सहन कर सकती है, बल्कि इनके प्रजनन मे भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नही देखा गया। मारवाडी नस्ल की बकरियो की तरह बीटल व जमनापारी नस्ल की बकरियों में प्रजनन का कोई विशेष मौसम नही होता। ये वर्ष भर प्रजनन योग्य रहती हैं। यह प्रयोग स्थानीय नस्ल की बकरियो को इन नस्लों द्वारा

सुधार की सभावनाओं को इगित करता है। बारबरी नस्ल की बकरी ग्रीष्मकाल को छोडकर अन्य मौसम मे यहॉ के वातावरण मे अच्छी तरह से ढल गये।

अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र की झकराना, कच्छी व मारवाडी नस्ल की बकरियों मे वृद्धि दर व जलवायु अनुकूलन के अध्ययन किये गये। साधारणतः कच्छी नस्ल की बकरियो में वृद्धि मारवाडी सदृश, परन्तु झकराना की वृद्धि दर इन दोनो से बहुत कम दर्ज की गई। झुन्झुनू व सीकर जिलो मे पायी जाने वाली अपनी तरह की विशिष्ट बिना सीग की शेखावटी बकरियो का अपने प्राकृतिक निवास क्षेत्र की तरह यहॉ पर भी संतोषजनक प्रदर्शन पाया गया।

बकरी और रेगिस्तानीकरण

संस्थान द्वारा सुझावित किया गया कि बकरी रेगिस्तानीकरण समस्या बढाने मे महत्वपूर्ण जैवीय प्रभाग नही है। इसकी अपेक्षा भेड मैदानों के समीप आस–पास ही पानी के स्थान के आस–पास के क्षेत्र मे चरने से मृदा कटाव द्वारा पारिस्थितिक अवहास का कारण बन रही है।

राजस्थान के रेगिस्तान से बकरी की दो दुधारू प्रजातियाँ

सस्थान ने बकरी की दो प्रजातियों परबतसर और शेखावटी बकरी की तरफ पशु विशेषज्ञो का ध्यान आकृष्ट करने हेतु इनके मात्रात्मक ऑकडे उपलब्ध कराए हैं।

राजस्थान में भेड़ों का पारिस्थितिकी वर्गीकरण

भेड की विभिन्न प्रजातियो का उपलब्ध चारागाह भूमि और चारे के प्रकार के अनुसार वर्गीकरण किया गया और भेड पारिस्थितिकी का एक मानचित्र बनाया गया। यह भारत मे अपने प्रकार पहला प्रयास है। विभिन्न देशीय भेड की प्रजातियों जैसे पूंगल, चोकला, नाली, मारवाडी, जैसलमेरी और मगरा का रेगिस्तानी स्थितियॉ मे उनके पानी प्रयोग की आर्थिकी, चारे प्रयोग का प्रभावकारिता और शुष्क गर्म पर्यावरण को अपनाने के निष्पादन हेतु परीक्षण किया गया। मारवाडी और मगरा इस क्षेत्र हेतु सर्वाधिक उपयुक्त प्रजातियॉ है।

मारवाडी और मगरा प्रजातियो मे देरी से पानी देने (सप्ताह मे दो बार) से उनके शरीर भार, ऊन उत्पादन और बच्चे पैदा करने के निष्पादन मे कोई बुरा प्रभाव नही पडता हैं। नियत्रित मात्रा में पानी सप्ताह मे दो बार देकर 100 भेडों के समूह से 6500 लीटर पेय पानी एक महीने मे बचाया जा सकता है। इस प्रकार भेड़ को जो कि रेगिस्तानी परिस्थितियो को स्वीकार्य प्रजाति है को रोज़ाना पानी देना बेकार है।

प्राकृतिक लवणीय जल का भेड़ पालन में उपयोग

प्रयोगों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि मारवाडी नस्ल की भेड अधिकतम 1 प्रतिशत तक लवणीय जल पर निर्वाह कर सकती है। मारवाड़ी व मगरा नस्ल की भेडो

को 1800 पी.पी.एम लवणीय जल पर रखा गया तो इनमे प्रजनन व अन्य दैहिक कार्यकी मे कोई प्रतिकूल प्रभाव नही देखा गया परन्तु जब लवणीय जल की मात्रा 3500 पी.पी.एम तक बढा दी गई, तो इनमें ऊन उत्पादन व प्रजनन मे प्रतिकूल प्रभाव देखा गया। वयस्क मारवाडी व मगरा नस्ल की भेड़ों पर 0 2 प्रतिशत, 0 35 प्रतिशत व 0.45 प्रतिशत लवणीय जल का दीर्घकालीन उपयोग सम्बधी अनुसंधान बताते है कि 0.35 प्रतिशत तक लवणीय जल पर रखी गई भेड के दुग्ध व ऊन उत्पादन में, एव उनसे प्राप्त मेननो मे जन्म–मृत्यु दर, भार–वृद्धि व ऊन उत्पादन मे प्रतिकूल प्रभाव नही हुआ। इसी प्रकार प्रजनन के विभिन्न घटको मे भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नही देखा गया। परन्तु 0 45 लवणीय जल सेवन पर भेडो मे दस्त की समस्या देखी गयी तथा गर्भ–धारण की क्षमता प्रभावित हुई।

भेडो पर नाइट्रेट युक्त लवणीय जल के दूषित प्रभावों पर भी अध्ययन किये गये व पाया गया कि 1 ग्राम/लीटर तक सोडियम नाइट्रेट युक्त जल पर रखी भेडो मे उत्पादन व प्रजनन कारको मे कोई प्रतिकूल प्रभाव नही होता। इससे अधिक नाइट्रेट युक्त जल पर आश्रित भेडो मे उत्पादन व प्रजनन कारकों में प्रतिकूल प्रभाव देखा गया।

पशु–उत्पादन

यहॉ की भेडों (मारवाडी, जैसलमेरी, मगरा) का औसत ऊन उत्पादन 1.56 कि. ग्रा. प्रति वर्ष है, जबकि राजस्थान का औसत प्रति भेड ऊन उत्पादन 1 3 कि.ग्रा. प्रति वर्ष है तथा राष्ट्रीय औसत 0 88 कि ग्रा प्रति वर्ष है।

परबतसर नस्ल की दुधारू बकरी का विस्तृत अध्ययन कर इसके द्वारा मरूस्थल में दुग्ध उत्पादन वृद्धि की सम्भवनाओ का पता लगाया गया। इस नस्ल की बकरिया मरूस्थलीय वातावरण को सह सकती हैं। ये बकरिया औसतन प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ ब्यॉत मे क्रमशः 132, 136, 138 व 140 लीटर तक दूध दे सकती हैं। इनके दूध मे वसा की मात्रा औसतन 4 प्रतिशत तक होती है।

पोषण प्रबन्धन

मरू क्षेत्रों में पेड़ों पर लगे चारे में पौषक–तत्व

रेगिस्तान का पशुधन प्रमुखत. निम्न पौषक–मूल्य वाली घास की प्राकृतिक प्रजातियो और कुछ कृषीय फसल के अवशेष, जिनमें कम प्रोटीन निहितता होती है पर अधिकाशतः चराई करता है। खेजडी (*प्रोसोपिस सीनरेरिया*) की पत्तियो (लूंग) और बोरडी (*जिजीफस न्यूमलेरिआ*) की पत्तियो (पाला) में सराहनीय मात्रा मे कच्चा प्रोटीन निहितता (14 0 और 13.0 प्रतिशत सूखा पदार्थ भार आधार पर) होती है। टेनिन सकेद्रण की निहितता इनके उपयोग को सीमित करती हैं। गर्म पानी और क्षारीय उपचार द्वारा इनमें टेनिन और लिगनिन की मात्रा को कम कर इनमे क्रमशः

हेमीसेल्यूलोज (सामि–कोश) और क्रूड प्रोटीन उपलब्धता को बढाया जा सकता है और इस प्रकार राजस्थान मे पशु उत्पादन को बढाने मे भी सहायता की जा सकती है।

तुम्बे की खल –

तुम्बे की बेल प्राकृतिक रूप से मरूस्थल मे बहुतायत व कम वर्षा मे भी उग जाती है। तुम्बे के फल हलके से गहरे पीले रंग, व 10–20 से.मी. गोलाकार तक के प्राप्त होते है। तुम्बे मे बीज व गूदा का अनुपात 1 : 3 का होता है। एक हैक्टयर मे 1–2 क्विटल बीज प्राप्त हो जाते है जिनमे 14 से 22 प्रतिशत तक औसतन तेल होता है।

तेल निकालने के बाद जो खल बच जाती है उसमें 16 से 22 प्रतिशत प्रोटीन, वसा 3 95, क्रूड फाईबर 42 0 व नत्रजन मुक्त सार 25 95, व लवण 11 2 प्रतिशत पाये जाते है। तुम्बे की खल अत्यन्त ही कम मूल्य रूपये 400/– प्रति क्विंटल है। यह मरू क्षेत्र में बहुतायत मे उपलब्ध है। गायो को इस खल को 25 प्रतिशत तक बाटे मे मिलाकर तथा भेड़ एव बकरियो को 50 प्रतिशत तक बाटे में मिलाकर खिलाने से उत्पादन में वृद्धि होती है। आवश्यकतानुसार बांटा देने से मारवाड़ी नस्ल की बकरी से 56 प्रतिशत तक हर ब्यॉत में जुडवा बच्चे प्राप्त किए जा सकते है। कुल लागत मे 18 से 35 प्रतिशत तक की कमी करके किसान जल्दी व ज्यादा मुनाफा कमा सकता है। भूसा/बाजरी कुतर चारें मे तुम्बे की खल मिलाकर खिलाने से पोषक तत्वो की कमी दूर हो जाती है व पाचन शक्ति अच्छी रहती है।

यूरिया उपचार पद्धति से सूखे चारे की पौष्टिकता में वृद्धि

पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में पशुओं को सामान्यत चराई के बाद सूखा चारा जैसे ज्वार/बाजरे की कडबी, कुतर, खाकला खिलाया जाता है जिसमे अपाच्य रेशो की मात्रा अधिक व पाच्य प्रोटीन की मात्रा नगण्य होती है जिस कारण पशु कुपोषण के शिकार होते है व दूध उत्पादन, प्रजनन एवं वृद्धि दर पर विपरीत प्रभाव पडता है। प्रदेश मे सूखे चारे का कोई विकल्प न होने की वजह से सूखे चारे की यूरिया उपचार पद्धति से पौषक गुणवत्ता बढाई जा सकती है। इस तकनीक के प्रमुख बिन्दु है –

- 100 किलो सुखे चारे के उपचार के लिए 4 किलो यूरिया की 40 से 50 लीटर पानी मे घोल दिया जाता है।
- 50 किलो सूखे चारे को साफ जमीन जो सीमेन्ट से बनाई हो, पर समान रूप से फैला दे।
- इस सूखे चारे के ऊपर 20–25 लीटर (आधा) यूरिया का घोल समान रूप से छिडके जिससे चारा अच्छी तरह से गीला हो जाये। इस गीले चारे को अच्छी

तरह हाथ व पैर से दबाया जाए जिससे मिश्रण पूरी तरह चारे मे लगे व चारे में हवा न रहे।

- इसी चारे के ऊपर दूसरे 50 किलो चारे की परत समान रूप से फैलाये व आधा बचा हुआ यूरिया का घोल ऊपर वर्णित क्रिया जैसे ही मिलाये व हाथो व पैरो से दबाये। इस सम्पूर्ण उपचारित चारे को मोटे प्लास्टिक से अच्छी तरह ढक कर रखे ताकि इस चारे मे कही से भी हवा प्रवेश न हो। अच्छी तरह बंद करने के बाद प्लास्टिक कवर पर बड़े वजनदार पत्थर रखे।
- इस प्रकार का उपचारित चारा 21 दिनो तक ढक कर रखने के बाद पशुओं को खिलाने हेतु तैयार हो जाता है।

पशुपोषण बट्टिका

चरने वाले पशु – गाय भैंस, भेड व बकरियो मे चरागाह से सम्पूर्ण पोषण न मिलने के कारण पौषक तत्वों की कमी हो जाती है। जिसका प्रभाव उनके उत्पादन पर तो पडता ही है तथा इनके बछडे, मेमने मे वृद्धि दर एवं पशुओं मे प्रजनन दर कम हो जाती है। "काजरी" द्वारा विकसित पशु पौषक बट्टिका में शामिल पौषक तत्वो से पशु उत्पादन बढता है।

पशु पौषक बट्टिका वह मिश्रण है जिसमें सभी पौषक तत्व सम्मिलित है जैसे ऊर्जा, प्रोटीन, लवण क्षार व विटामीन के स्रोत/पशु इन बट्टिका को चाटने से खाने से उन सभी पौषक तत्वों की पूर्णता कर लेता है। इससे पशु उत्पादन में सुधार आ जाता है। पोषण बट्टिका बनाने हेतु प्रचलित एवं अप्रचलित पशु खाद्यों का उपयोग लिया जाता है जैसे कि .

- ऊर्जा स्त्रोत – अप्रचलित स्रोत शीरा या गुड
- रेशो के स्रोत– गेहूँ की चापड, चावल का ब्रान
- विटामिन, क्षार मिश्रण व नमक
- प्रोटीन स्रोत–अप्रचलित स्रोत–यूरिया व प्रचलित स्रोत–प्रदेश में उपलब्ध खल जैसे की मूंगफली/ कपास/ सोयाबीन, रायडा/ तुम्बे का खल या ग्वार की चूरी, भरडा
- बाइडर जैसे– ग्वारगम पाउडर, कोपर ऑक्साईड

गाय व भैसो में – सामान्यत: 2 किलो की एक बट्टिका 8 से 10 दिनो तक पर्याप्त पोषण देती है। भेंड व बकरियों में दो रूपये किलो की एक बट्टिका प्रति पशु 22–25 दिनो तक पर्याप्त पोषण हेतु उपयुक्त है। पौषण मिश्रण की मात्रा 80–100 ग्राम प्रति दिन प्रति पशु दी जा सकती है।

- गाय, भैस व बकरियो को पोषक बट्टिका खिलाने से 15–25 प्रतिशत दूध उत्पादन मे बढ़ोतरी देखी गई है।

उन्नत पशु आवास

बहु पौषक पशु आहार

• मांस उत्पादन हेतु पाले गए बकरो में 20–30 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई है।

उन्नत पशु आवास व्यवस्था

वैसे तो मरूक्षेत्र के पशुधन प्रजातियॉ इस क्षेत्र की विषम पर्यावरणीय परिस्थिति से पूर्णत अनुकूलित है। परन्तु मौसम की प्रचण्डता की वजह से पशु भीषण गर्मी (40°–45° सें.) व सर्दियों (2°–6° सें.) के समय मे पशु की उत्पादकता (दुग्ध, ऊन व मास) कम हो जाती है। प्रयोगों के आधार पर यह देखा गया है कि यदि मौसम की प्रचण्डता के दौरान पशुओ को उन्नत पशु आवास में रखा जाये तो पशु अपनी उत्पादकता बराबर बनाए रखता है।

मरूस्थल की जलवायु को देखते हुए सस्थान में एक "उन्नत पशुआवास" का विकास किया गया है। जिसके पशु गर्मी, सर्दी व वर्षा के मौसम की विषम परिस्थतियों मे भी आराम से रहता है। इस आवास की विशेषताये निम्नलिखित हैं।

- यह आवास पूर्व–पश्चिम दिशा आधारित होता है। आवास का आकार आयाताकार एव छत झौंपडीनुमा होती है। आवास की लम्बाई 60 फुट, चौडाई 16 इच एवं ऊँचाई मध्यम से 10 फुट व किनारे से 7 फुट होती है।
- आवास का लम्बा हिस्सा दक्षिण की तरफ से खुला होता है। जिससे सर्दियो मे पूरे दिन सूर्य की किरण व धूप आती है एवं गर्मियो मे इस ओर से हवा आती है।
- आवास की छत सीमेंट की चादरो से बनी होती है। ऊपर से आनेवाली गर्मी व ठण्ड को रोकने के लिए छत के नीचे 4 इंच मोटा धास–फूस का छप्पर लगाया जाता हैं।
- आवास के अन्दर उत्तर की तरफ चारे–दाने के लिये एक विशेष प्रकार की खेली बनाई जाती है जिसमें पशु आसानी से चारा खा सके।
- आवास के चारो तरफ पर्याप्त मात्रा में खुली जगह होनी चाहिए जिसमें पशु अपनी इच्छानुसार व मौसम के अनुरूप विचरण कर सके।

वन्य पशुओं का पारिस्थितिकी अध्ययन

"काजरी" द्वारा देश मे पहली बार ब्लैकबक (कलसार) और चिंकारा हरिणों पर चार स्थलों मे (1) राष्ट्रीय मरू उद्यान जेसलमेर (2) जोधपुर के निकट गुडा–विश्नोइयां गॉव (3) धवा डोली और (4) तालछापर चूरी मे इनका मात्रात्मक, पारिस्थितिक, दैहिक अध्ययन शुरू किया गया। इस अध्ययन ने दोनों प्रजातियों मे चारे प्रयोग के सम्बध में विभिन्नता को दिखाया। जोधपुर के आस–पास रेगिस्तान क्षेत्र मे नील गाय (ब्ल्यू बुल) की सख्या पर किए गए सर्वे से स्पष्ट हुआ कि इस प्रजाति द्वारा भारी मात्रा में फसल को नुकसान पहुँचाया जा रहा हैं। इस सम्बध में आगे अनुसंधान प्रगति पर हैं।

कृषि एवं सौर यंत्रों का विकास

दो लाइनों वाला बुवाई यंत्र

इस सस्थान में ट्रेक्टर चलित दो लाइनो वाले बुवाई यत्र का विकास किया गया है। इस यत्र की सहायता से परीक्षण खेतो मे दो लाइनों मे एक साथ विभिन्न प्रकार के बीजों की निश्चित गहराई पर एव निश्चित दूरी पर नियत्रित कर बुवाई की जा सकती है। साथ ही बीजों को मिट्टी मे हल्का सा दबाया भी जा सकता है और मिट्टी में उपलब्ध नमी बीजो के अकुरण मे सहायता करती है और ज्यादा से ज्यादा मात्रा मे बीज अंकुरित होते है, जिससे पैदावार में बढोत्तरी होती है। यह यत्र शुष्क क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की फसलो की बुवाई के लिए बहुत उपयोगी है।

इस यंत्र की सरचना में लोहे की फ्रेम पर स्वतंत्र रूप से दो यत्र समूह है। जिसमे प्रथम स्थान पर छोटा हल लगा हुआ है जो कि सूखी मिट्टी की परत हटाने का कार्य करता है। इसके पश्चात दो तवीनुमा कूँड बनाने वाला यत्र है जिससे जमीन मे एक निश्चित गहराई की कूँड का निर्माण होता है। बीज की बुवाई के लिये एक चाडी स्थापित की गई है जिसमे बीज डालते ही तिकोनाकार स्तभ से बीज समान मात्रा मे एक चक्राकार प्लेट द्वारा वितरित हो जाता है। इस चक्राकार प्लेट को चेन व स्प्रोकेट की सहायता से घुमाया जाता है। इस यत्र के प्रयोग से बीज उचित मात्रा मे एक छिद्र व पाइप की सहायता से कूँड मे स्थापित हो जाता है। यंत्र में लगे हुए तवेदार फावडे मिट्टी से बीज को ढक देते है। साथ ही उसके पीछे लगे हुए दबाव पहिये से मिट्टी बीज को दबा देती है जिसके फलस्वरूप मिट्टी मे उपस्थित नमी बीज के त्वरित अकुरण में सहायक होती है।

खरपतवार नियंत्रक यंत्र

सस्थान द्वारा एक मानव चलित खरपतवार नियत्रक यत्र का विकास किया गया है। इसकी सहायता से फसलों की दो लाइनो के बीच के खरपतवार को निकाला जा सकता है। इस यंत्र को आगे पीछे करके एक आदमी 85–90 मानव घण्टे मे एक हैक्टेयर जमीन के खरपतवार निकाल सकता है।

खेतों में मिट्टी की परत तोड़ने वाला यंत्र

"काजरी" द्वारा विकसित इस यत्र में लोहे की फ्रेम मे एक दांतेदार बेलन के पीछे 24 से मी चौडी ब्लेड लगाई गई है। इस पूरे फ्रेम को लोहे के पाइप के हैण्डल से जोडा गया है जिससे इस यत्र को एक आदमी आसानी से आगे पीछे करके खेतों में

चला सके। इसकी सहायता से 80–85 मानव घण्टे मे एक हैक्टेयर खेत मे मिट्टी की परत को तोडने के साथ–साथ खरपतवार पर भी नियंत्रण किया जा सकता है।

बोरा पकड़ने वाला स्टेण्ड

बोरा पकडने के लिए लोहे का स्टेण्ड बनाया गया, जिसकी सहायता से दो आदमियो के बजाय केवल एक आदमी ही बोरे मे अनाज भरने का कार्य सुविधापूर्वक कर सकता है। इसके फलस्वरूप मानव श्रम की बचत होती है।

हरा चारा भंडारण संयंत्र

शुष्क क्षेत्र मे सबसे अधिक दुधारू पशुओ का पालन किया जाता है और दुधारू पशुओ की दूध देने की क्षमता उनको दिये जो रहे हरे चारे पर निर्भर करती है। अत. यहाँ हरे चारे (साईलेज) के भण्डारण का विशेष महत्व है, जिससे पूरे साल हरे चरे की उपलब्धता बनी रहे। इस संस्थान में हरे चारे के भण्डारण के लिए एक सयंत्र विकसति किया गया है। जमीन के अन्दर लोहे, मिट्टी, रेत व सीमेन्ट की सहायता से भडारण सयत्र का निर्माण किया गया है, जिसकी भंडारण क्षमता 3 क्विटल है। इसके साथ–साथ 25 क्विटल क्षमता वाले सूखे चारे के भडार का भी निर्माण किया गया है।

बेर ग्रेडिंग मशीन

शुष्क क्षेत्र मे बेर एक महत्वपूर्ण फसल है। इसे ध्यान मे रखते हुए सस्थान में बेर ग्रेडिग मशीन का निर्माण किया गया। इसकी सहायता से विभिन्न आकार के बेरो को तीन अलग–अलग श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है। इस मशीन में दो अलग–अलग मापो के छिद्र वाले छल्लो को फ्रेम पर ढलान पर देते हुए व माप के अनुसार लगाया गया, जिससे फल अपने वजन व माप के अनुसार ही नीचे की ओर हो सके। मशीन के पूरे छल्लो के समूहो को एक व्यक्ति हेन्डल से संचालित कर सकता है। इसकी सहायता से प्रति घण्टा लगभग 100 कि.ग्रा. बेरो की ग्रेडिग की जा सकती है।

बूँद–बूँद सिंचाई संयंत्र

पानी के अधिक क्षमता से उपयोग के लिए कम दबाव से चलने वाले बूँद–बूँद सिंचाई सयंत्र का विकास किया गया है। इस सयत्र को जमीन की सतह से 1 मी. की ऊँचाई पर स्थित पानी की टकी से जोडने पर यह गुरूत्वाकर्षण शक्ति से स्वचालित रहता है और बिजली की आवश्यकता नही होती है। इस सयत्र के उपयोग से करीब 40 प्रतिशत उत्पादन बढोत्तरी के साथ–साथ करीब 25 प्रतिशत पानी भी बचाया जा सकता है। इसे चलाने के लिए बाह्य शक्ति की जरूरत नही पड़ती है।

बूँद–बूँद पानी और फव्वारा सिचाई पद्धतियो को स्तरीकृत किया गया। बूँद–बूँद पानी से सिंचाई पद्धति की प्रारभिक लागत करीब 35000/है आती हैं जो कि दो उच्च

मूल्य की फसले, टमाटर और खरबूजा की खेती द्वारा दो वर्ष मे फिर से प्राप्त की जा सकती है। रेगिस्तानी घास विशेषकर *एल सिंडीकस* (सेवण) हेतु फव्वारा सिचाई पद्धति विकसित करने हेतु कार्य प्रगति पर हैं। यह निश्चित है कि प्रत्येक महीने सितम्बर–अक्टूबर, फरवरी और अप्रेल मे 9 से.मी सिंचाई देकर सेवण घास की 6 कटाई प्राप्त की जा सकती हैं। इससे कुल हरा घास उपज 31.5 टन/है. (सूखा पदार्थ 12.7 टन/है.) प्राप्त किया जा सका। सूखे की स्थितियो मे सेवण घास का सूखा पदार्थ उत्पादन 1 से 5 टन/है. वर्षा पर आधारित है।

घास व चारे की गाँठ बनाने की मशीन

घास व चारे का सूखे के समय महत्व बढ जाता है। अच्छी वर्षा वाले वर्ष में पैदा हुए घास व चारे को कम से कम जगह मे सुरक्षित रखने के लिये गॉठ बनाने की आवश्यकता पड़ती है। जिससे उसका परिवहन भी आसानी से किया जा सके। इस समस्या को ध्यान मे रखते हुए ट्रैक्टर के पी.टी.ओ. धुरी द्वारा चलित घास व चारे की गॉठ बनाने वाली मशीन का निर्माण किया गया है। इस मशीन की सहायता से 6–8 क्विटल प्रतिदिन की दर से घास व चारे की गॉठ बनाई जा सकती है।

सौर ऊर्जा आधारित विभिन्न उपकरण

थार मरूस्थल देश का एक ऐसा क्षेत्र है जहॉ सबसे ज्यादा सौर ऊर्जा उपलब्ध रहती है और सबसे ज्यादा समय तक सूर्य प्रकाश उपलब्ध रहता है। इस क्षेत्र मे वर्षा दिवस लगभग केवल 20 दिन ही है और कभी–कभी तो इससे भी कम होती है। इसलिये इस क्षेत्र में सौर ऊर्जा का दोहन अधिक से अधिक हो सकता है। सौर ऊर्जा को खाना पकाने, कृषि उत्पादो को सुखाने, पानी गर्म करने, पशु आहार उबालने, आसुत जल उत्पादन, मोम पिघलाने, शीत भण्डारण आदि के उपयोग मे लिया जा सकता है। इसके अलावा सौर ऊर्जा को बिजली में भी बदला जा सकता है ताकि रोशनी हो सके तथा पम्प, टेलीविजन व रेडियो जैसे उपकरणों को चलाया जा सके।

सौर कुकर

भारत में कुल ऊर्जा की खपत का 50 प्रतिशत सिर्फ भोजन, पकाने मे खर्च हो जाता है। लकड़ी की खपत करीब 400 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है। गॉवों मे गोबर के उपलो को भी जलाया जाता है। अगर गोबर को ईंधन के बजाय खाद के रूप मे खेतो मे प्रयोग करे तो कृषि उत्पादन बढ सकता है। अत. सौर चूल्हे ईंधन बचाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है।

सौर चूल्हा दोहरी दीवार वाला बक्सा होता है। दीवारों के बीच मे कुचालक भरा जाता है। ऊपर दो पारदर्शी कॉच तथा एक दर्पण लगा रहता है। इसे दक्षिण दिशा की तरफ रखा जाता है। जो भोजन पकाना हो उसको एल्युमिनियम के डिब्बों मे उचित

उन्नत सौर शुष्कक

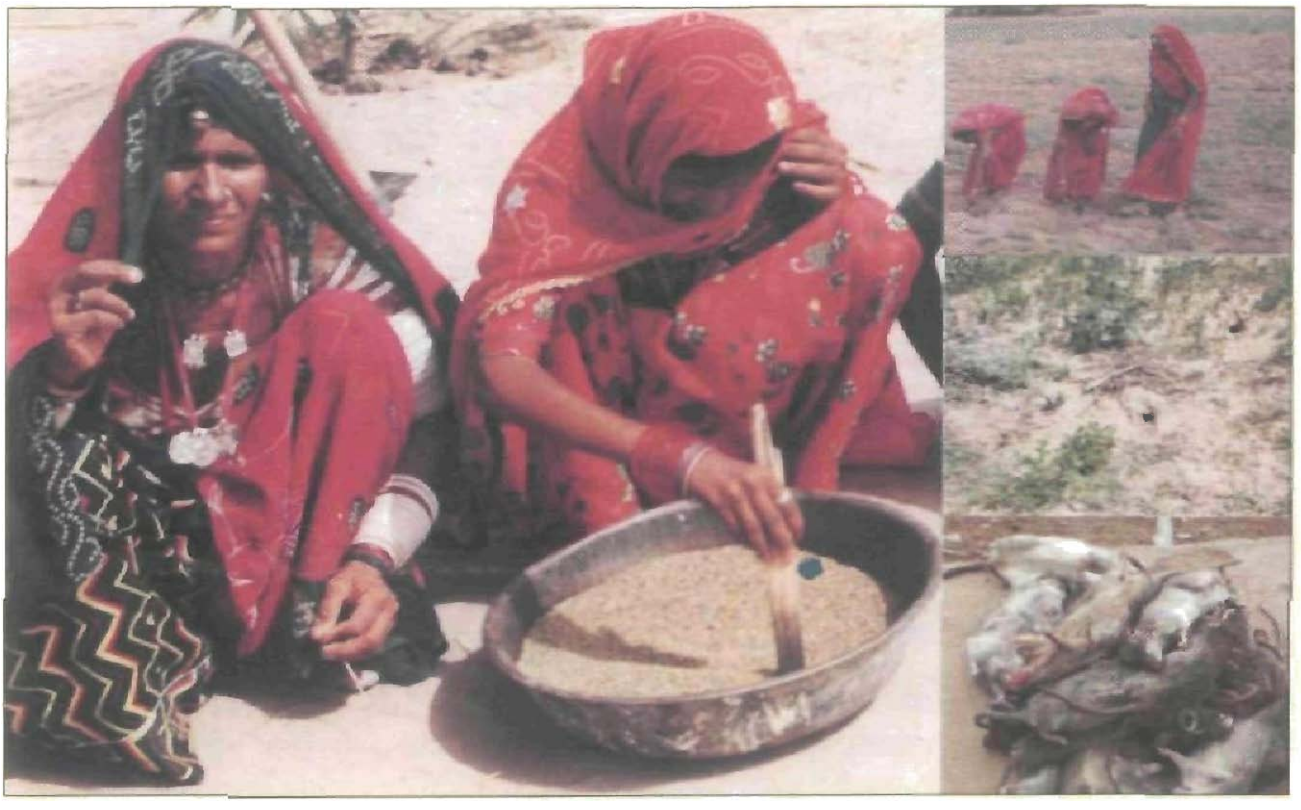

विष चुग्गे द्वारा खेतों में चूहा नियन्त्रण

मात्रा में पानी के साथ रखने से दो से तीन घण्टे मे पक जाता है। सर्दियो मे समय ज्यादा लगता है।

पशु आहार सौर कुकर

पशुओ के खाद्य पदार्थ (बाटा) पकाने हेतु एक बडे आकार का सौर कुकर रेखाकित, विकसित और अन्विक्षित किया गया। कुकर में स्थानीय रूप से उपलब्ध एवं सस्ती सामग्री जैसे चिकनी मिट्टी, बाजरे का भूसा और लीद प्रयोग मे आती है। व्यवसायिक सामग्री जो इसके निर्माण हेतु आवश्यक है वह है सादा कॉच, माइल्ड स्टील एंगल और सीट, लकडी और एल्यूमिनियम सीट, पकाने के बर्तन आदि। इस सौर कुकर मे 5 पशुओं हेतु बॉटा (खाने की सामग्री) 10 कि ग्रा. तक पकाया जा सकता है इसकी प्रभावकारिता 21.8 प्रतिशतहै। इस कुकर की लागत 2000 रूपये है। इस सौर कुकर के प्रयोग से 65 कि.ग्रा ईंधन प्रतिदिन बचत की जा सकेगी।

सौर शुष्कक

थार रेगिस्तान फल व सब्जियॉ सुखाने के लिय बहुत ही उपयुक्त क्षेत्र है। सूर्य के प्रकाश से खुले मैदान में फलों व सब्जिया को सुखाने की विधि दीर्घकाल से प्रचलित है। इस विधि से उपज मे धूल गिरती है, कीडे लग जाते है तथा उत्पाद को वर्षा से नष्ट होने का डर रहता है। सूखी हुई पत्तेदार सब्जियॉ तेज हवा मे उड जाती है। सौर शुष्कक के प्रयोग से इस हानि से बचा जा सकता है।

"काजरी" द्वारा एक ऐसे सौर शुष्कक का निर्माण किया गया है जिसमे 100 कि ग्रा. फल व सब्जियों को सुखा सकते हैं। इसके निर्माण मे लगने वाले पदार्थ जैसे एल्युमिनियम या सफेद लोहे की चद्दर, लोहे की एगल, कॉच, जाली इत्यादि बाजार मे उपलब्ध है। इस सौर शुष्कक मे विभिन्न प्रकार की सब्जियों को सुखा जा सकता है। इनमे मुख्यत पालक, धनिया, पोदीना, मेथी, बथुआ, भिण्डी, गोभी, ग्वारफली, प्याज, लहसुन, हरी व लाल मिर्च, मटर, चुकन्दर, अरबी, हल्दी, मूली, गाजर, इमली, काचरा, बेर, खजूर, अगूर इत्यादि 2 से 4 दिन मे सुखाई जा सकती है। हरी सब्जियों का रग हरा ही रहता है। सूखी सब्जियो को गर्म पानी में भिगोने से उनका आकार वापस ताजी सब्जी के बराबर हो जाता है तथा बाद मे सब्जी बना सकते है। किसानो के पास जब सब्जियो की मात्रा व उत्पादन अधिक हो तो उस समय सुखाकर बाद में अधिक कीमत पर बेच भी सकते है। एक सौर शुष्कक, जिसकी क्षमता 10 कि.ग्रा है, की कीमत करीब रू 3000 है। इस तरह पूरी इकाई, जिसमे 10 सौर शुष्कक लगे होते है, की कीमत रू 30000 है।

संग्रहक सहित संचयन टंकी वाला सौर जल तापक

गर्म जल का उपयोग नहाने, कपडे व बर्तन धाने आदि घरेलू कार्यों के लिये किया जाता है। देश में प्रचलित प्राकृतिक परिभ्रमण जलतापक यत्र बाजार मे उपलब्ध है

जिसकी कीमत अधिक होती है। साधारण आदमी इसे खरदीने मे असमर्थ है, अत "काजरी" द्वारा एक नये प्रकार का सौर जलतापक यत्र बनाया गया है जिसमे सौर सग्राहक व सचयन टकी को एक ही मे समन्वित किया गया है। यह टकी संग्राहक का कार्य भी करती है तथा गर्म पानी को इकट्ठा भी रखती है। इससे इसकी कीमत कम हो गयी है।

यह सौर जल तापक आयताकार जस्ते लगे लोहे की टकी का बना होता हैं जिसकी क्षमता 100 लीटर है। टकी की ऊपरी सतह को श्याम पट्ट रग से रंग दिया जाता है। टकी को जस्ते लगे लोहे की चद्दर की बनी ट्रे मे 100 मि.मी. कुचालक पदार्थ भरकर रख लिया जाता है। इसके ऊपर 4 मि.मी मोटे दो साधारण पारदर्शी कॉच लगाये गये है। तापक को उचित कोण पर लोहे के एंगल स्टेण्ड पर खडा रखा जाता है जिससे शीत ऋतु मे तापक की सतह पर अधिकाधिक सौर विकिरण गिरे। इस सौर जल तापक से प्रतिदिन 100 लीटर पानी (55° से 65° से तापमान) शाम को प्राप्त किया जा सकता है तथा कुचालक ढक्कन से शाम को ढकने पर दूसरे दिन प्रात काल तक 40°–50° से तक गर्म जल प्राप्त कर सकते है। इस जल तापक के प्रयोग से प्रतिदिन 4 किलोवाट विद्युत की बचत कर सकते है।

सौर आसवन संयंत्र

सौर आसवन सयत्र ऐसा साधन है जो सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करके खारे या गन्दे पानी को आसवित पानी बना देता है। असावित पानी की आवश्यकता जीप व ट्रेक्टर की बैटरियो मे तथा विद्यालय की रसायन प्रयोगशाला मे होती है। आसवित पानी मे उचित मात्रा मे खारा पानी मिलाकर पीने के पानी के रूप मे भी काम मे ले सकते है। एक वर्ग मीटर क्षमता के संयत्र से 3–4 लीटर आसवित पानी प्रतिदिन प्राप्त कर सकते है।

पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर आधारित कूल चैम्बर

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान सस्थान, जोधंपुर ने एक बहुत सस्ती घरेलू शीतल तकनीकी का विकास किया है जो रेगिस्तानी क्षेत्रो में सब्जी एव फलो का लघु समय के लिये आसानी से सरक्षण कर सकती है। इस नई शीतल विधि की विशेषता यह है कि इसमें न तो बिजली की कोई आवश्यकता होती है और न ही इसे बनाने मे किसी विशेष निर्माण सामग्री की जरूरत पडती है। गॉव मे ही उपलब्ध निर्माण सामग्री से इसे आसानी से बनाया जा सकता है।

यह नई शीतल विधि पानी के वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर कार्य करती है और गर्मियों मे काफी उपयोगी है विशेषकर ऐसे प्रदेशो/क्षेत्रो मे जहॉ पर हवा मे आर्द्रता कम हो। राजस्थान मे अधिकतर जगहो पर गर्मियो के दिनों में आर्द्रता कम ही रहती है। जैसे–जैसे आद्रता कम होती है ठडक का प्रभाव बढता चला जाता है। ज्ञात रहे कि डेजर्ट कूलर भी इसी वाष्पीकरण द्वारा शीतलता के सिद्धान्त पर कार्य

करता है। अन्तर इतना है कि डेजर्ट कूलर मे बिजली की आवश्यता होती है और इसे घरो को ठण्डा करने के लिये प्रयोग मे लिया जाता है जबकि इस विधि (कूल चैम्बर) मे बिजली की कोई आवश्यकता नही होती और सब्जी, फलों, बचा हुआ खाना एव दूध आदि को ठण्डा रखकर उनका लघु समय के लिये सरक्षण किया जाता है।

यह नई शीतल विधि एक दोहरी ईंट की दीवार से बनाया गया छोटा चैम्बर है जिसकी अन्दरूनी नाप लगभग 60 x 60 x 50 से.मी. है। इस दोहरी ईंट की बनी दीवार के बीच (10 से.मी. का फासला) पानी (दिन मे एक बार) भर देते हैं। यह पानी ईंट की बाहरी दीवार की सतह से वष्पीकरण द्वारा चैम्बर के अन्दर के तापमान को कम कर देता है जैसे मटके मे पानी का तापमान स्वत ही समय के साथ घटता जाता है। कूल चैम्बर की अन्दर वाली ईंट की दीवार से पानी का वाष्पीकरण होने से चैम्बर में आर्द्रता काफी ऊँची (80–90 प्रतिशत तक) बनी रहती है जबकि खुली जगह में आद्रता लगभग 50 प्रतिशत या इससे भी कम रहती है। अधिक आद्रता और तापमान कम होने के कारण कूल चैम्बर में लघु समय के लिये फलों एव सब्जियो का सरक्षण किया जाता है। इस सस्थान में कुछ सब्जियो जैसे टमाटर, मिर्च, बैगन, पत्तागोभी, गाजर, भिण्डी, फूलगोभी, आलू इत्यादि का गर्मी एवं सर्दी के दिनो में सफलतापूर्वक सरक्षण किया है। इस तरह की यह नई शीतल विधि किसानो और सब्जी विक्रेताओ के लिये एक वरदान है। सब्जी का सही समय पर खेतों से निकास नही होने तथा बाजार तक नही पहुँच पाने के कारण खराब हो जाती है। किसान को उचित मूल्य नही मिलने पर सब्जी का अल्प समय के लिये संरक्षण करना पडता है, इससे किसान को दोहरी मार झेलनी पडती है। पहली सब्जी का कम भाव मिलना व दूसरा सरक्षण के समय सब्जी मे होने वाला नुकसान। इस शीतल चैम्बर के प्रयोग से किसान सब्जी का लघु समय (4–5 दिन) के लिये सुरक्षित सरक्षण कर सकते हैं तथा अच्छा भाव मिलने पर सब्जी का विक्रय कर सकते है।

सौर ऊर्जा आधारित मोमबत्ती निर्माण उपकरण

सौर ऊर्जा आधारित मोमबत्ती निर्माण उपकरण की यह विशेषता है कि इसमे मोम को सूर्य की गर्मी द्वारा पिघला कर इसे साँचो में भर दिया जाता है। एक दिन मे 15–16 कि.ग्रा. मोमबत्तियाँ बनाई जा सकती है। इस उपकरण की कीमत रू 5000 आती है। इसको गृहणियाँ एव बच्चे तथा बुजुर्ग आसानी से काम मे ले सकते हैं।

इस विधि में क्योकि मोम एक बन्द डिब्बे में ही पिघलाया जाता है इसलिये वाष्पीकरण द्वारा मोम नहीं उड पाता। इसके अलावा काम करनेवाले व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव नहीं पडता। वाष्पीकरण द्वारा 25–30 प्रतिशत तक होने वाले मोम के नुकसान से भी बचा जा सकता है।

सौर मोमबत्ती बनाने की मशीन रोजगार उपलब्ध करवाने वाली मशीन है। पारम्परिक मोमबत्ती बनाने की मशीन की अपेक्षा यह अत्यन्त लाभकारी है। इसमे वाष्पीकरण श्रम और लागत कीमत को कम किया जा सकता है।

छोटी आकार वाली सौर मोमबत्ती बनाने की मशीन की उत्पादक क्षमता गर्मी में 10–16 कि.ग्रा. मोमबत्ती और सर्दी मे 6–9 कि.ग्रा है। इस की कीमत 12000 रूपये (9000 रू मोमबत्ती मशीन के + 3000 रू अन्य सामग्री के) है। इससे एक व्यक्ति 1000–1500 रूपये प्रति महीने अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकता है।

राष्ट्रीय अनुसंधान एवं विकास परिषद ने इस युक्ति के लिए "काजरी" के डॉ पी बी एल चौरसिया, प्रधान वैज्ञानिक को 25000 रूपये का नकद पुरस्कार दिया है।

बहुउद्देश्यीय सौर यंत्र

एक ही यंत्र से दो या उससे अधिक कार्य करने हेतु बहुउद्देश्यीय सौर संयंत्र भी "काजरी" में बना लिये गये हैं। इसमे एक सौर शुष्कक मय चूल्हे से भोजन भी बन सकता है और फल सब्जियो को भी सुखाया जा सकता है। एक अन्य सयंत्र सौर जलतापक मय शुष्कक से पानी भी गर्म किया जा सकता है। इस प्रकार एक बहुउद्देश्यीय संयत्र से पानी भी गर्म हो सकता है, भोजन भी बन सकता है और फल व सब्जियो को भी सुखाय जा सकता है। इसके उपयोग से घरेलू कार्यों में खर्च होने वाले ईंधन की बचत की जा सकती है।

सौर प्रकाश वोल्टीय उपकरण

सिलिकॉन जैसे अर्द्ध चालकों से बने यह सेल सौर ऊर्जा के 10–12 प्रतिशत भाग को सीधे बिजली मे बदल देते हैं। इन सौर सेल से चलने वाले संयत्रो का प्रयोग कर विभिन्न प्रकार के उन सभी कार्यों को किया जा सकता है जिनमें बिजली की आवश्यकता होती है। इसी सिद्धान्त पर आधारित सौर स्प्रेयर एवं डस्टर का विकास किया गया है जिससे कीटनाशी दवाओ के छिडकाव एवं भुरकाव किया जा सकता है। इसमे जहॉ सौर पेनल आदमी को छाया प्रदान कता हैं वही स्प्रेयर व डस्टर को चलाने के लिये बिजली भी पैदा करता है। सौर सैल से चलने वाले पम्प इन्दिरा गॉधी नहर के आस–पास के भागो में उद्यानों के विकास हेतु अत्यन्त उपयोगी हैं। इन सौर पम्पों से बूँद–बूँद सिंचाई द्वारा जहॉ एक ओर जल की बचत होती है वही दूसरी ओर अत्यधिक जल के उपयोग से होने वाली समस्याओ जैसे लवणीयता एवं जल भराव से भी बचा जा सकता है। सौर पम्प मे आजकल सरकार की ओर से अनुदान भी उपलब्ध है।

सामुदायिक सौर कुकर

80 व्यक्तियो हेतु खाना पकाने का एक सामुदायिक सौर कुकर रेखाकित करके निर्मित और परीक्षित किया गया। यह कुकर हॉट बॉक्स सिद्धान्त पर आधारित है। इसमे एक परावर्तक है। इस कुकर को इस प्रकार बनाया गया है कि चौड़ाई से लंबाई का

रिफलेक्टर और कॉच की खिडकी का अनुपात करीब 4" है। इस प्रकार अधिकतम विकिरण अनुरेखण कॉच पर होता है। इस कुकर को हमेशा मध्यरेखा के सामने करके निर्धारित किया गया है। कुकर को उबालने, बेक करने और पकाने के लिए प्रयोग मे लाया जा सकता है। इससे प्रति वर्ष 6 टन ईंधन की बचत होती है।

सौर संचालित बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति

"काजरी" द्वारा बूँद–बूँद पानी से सिचाई पद्धति की उपयोगिता को देखते हुए मरूस्थलीय क्षेत्रो हेतु एक समन्वित सौर पी.वी. चालित सिंचाई पद्धति का विकास किया गया है। जिससे इस क्षेत्र मे उद्यानों के विकास के लिए बूँद–बूँद सिचाई पद्धति को सौर ऊर्जा द्वारा चलाया जा सके। इस सिस्टम को बनाते समय पौधो के लिए जल की आवश्यकता सौर पम्प की उपलब्धि, सौर पम्प की कार्य–क्षमता और विभिन्न प्रकार के ड्रिपर की प्रायोगिकता को ध्यान मे रखा गया है। इस सिस्टम मे 900 पीकवाट के सिलिकान के सौलर सेल के पैन का उपयोग किया गया है, जो 800 वॉट की मोटर मय पम्प को 6–7 घंटे प्रतिदिन चलाने मे सक्षम है। इससे एक समय मे करीब एक हैक्टेयर मे 300 पौधो पर लगे ड्रिपर्स से सिचाई की जा सकती है। यह सिस्टम 4–5 हैक्टेयर के उद्यान के विकास के लिए सक्षम है।

निम्नलिखित सौर उपकरण संस्थान द्वारा ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रो में अपनाने हेतु विकसित किए गए।

- सहित संग्रहक प्रकार का सौर पानी गर्म करने का हीटर
- सौर पानी गर्म करने का हीटर सहित आसोत्र (स्टील)
- सौर पानी गर्म करने का हीटर कम कुकर
- तापमान का ऑटो संचालक सहित सौर कैबिनेट ड्रायर

इन सभी का विस्तृत स्तर पर प्रयोग छोटे–छोटे उद्योगों, पब्लिक सेक्टर के अधिकरणो सरकारी विभागो और कृषकों द्वारा व्यक्तिशः किया जा रहा है।

उत्पाद–प्रसंस्करण

बकरी दूध उत्पाद

मरूस्थलीय ग्रामीण क्षेत्रो मे बकरी पालन एक आर्थिक स्थिरता प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण व्यवसाय हैं। बकरी पालन मुख्यत दूध व बकरें के मास उत्पादन हेतु किया जाता है।

बकरी दूध का महत्व

- बकरी का दूध कार्बनिक प्रकृति का उत्पाद है जो अत्यन्त पौष्टिक एव पाचक है। इसके दूध से बच्चो मे एलर्जी की बीमारी नही होती है।
- बकरी के दूध मे कम वसा (2 5–3 8 प्रतिशत) और अधिक लेक्टोज (28–36 प्रतिशत) पाया जाता है।
- केल्शियम, पोटेशियम, लोहा, मेगनीशियम, फॉस्फोरस और तांबा जैसे तत्व एव विटामिन–सी गाय के दूध की अपेक्षाकृत अधिक पाये जाते है।
- 100–150 मि.लि. बकरी का दूध एक बच्चे के लिए पूर्ण आहार है।

बकरी के दूध मे पाई जाने वाली दुर्गन्ध के कारण इसके उत्पाद नही बन सके। "काजरी" ने शोध एव प्रयास से दूध की दुर्गंध को दूर करके इसका पनीर, कुल्फी, व्हे–पेय बनाया है।

बकरी के दूध की कुल्फी

- बकरी के दूध को उबाल कर उसको गाढा कर लें।
- उबालते समय ही 70 ग्राम गाढे दूध मे 5 ग्राम शक्कर, 1 मिलीग्राम · केसर, 1 ग्राम : काजू, 3 ग्राम . पिस्ता और वनीला एसेन्स 0 3 मिली॰ डाले।
- गाढा किया हुआ 70 ग्राम दूध मिश्रण कुल्फी के सॉचे में डालकर ठण्डा फ्रीज में 5–6 घटे रखने पर कुल्फी तैयार हो जाती है। एक कुल्फी के बनाने की कीमत रूपये 2.50 आती है जो बाजार में कम से कम रूपये 5 मे बिक जाती है। अगर फ्रीज न हो तो एक मटके मे नमक, कमली शोरा और थोड़ा बर्फ डाल दे और कुल्फी के सॉचे उसमे रख दे। तो भी 6–7 घण्टे मे कुल्फी जम जाती है।

बकरी के दूध का पनीर

- दूध को धीरे–धीरे हिलाते हुये गर्म करे।
- फिर उसमे साइट्रिक अम्ल 0 15 प्रतिशत की दर से मिलाये तथा दूध को हिलाते रहे।

- जैसे ही हरे पीले रंग का व्हे पनीर छाछ दिखाई देने लगे, पनीर को मलमल कपडे से छान ले।
- उसके बाद पनीर को ठण्डे पानी मे दो से तीन मिनट तक डुबा कर रखे। तत्पश्चात् पनीर को कपडे मे बाध ले और उसके ऊपर 5 किलो का वजन रख दे। 1 घण्टे में पनीर बन जायेगा।

पनीर छाछ (व्हे)–पेय

नमकीन स्वादिष्ट पनीर छाछ–पेय बनाने के लिए पनीर छाछ को 15 मिनट तक उबाल कर उसको मलमल के कपडे से छानते है। इसमे फिर 4 ग्राम : काला नमक, 2 ग्राम साधारण नकम, 25 मि.ली: पोदीना का पानी और केवडा या खसखस और खाने के कलर डालकर पनीर छाछ–पेय तैयार किया जाता है।

इसमे प्रचुर मात्रा में लवण जैसे केल्शियम, आयरन, पोटेशियम, मेगनीशियम, फास्फोरस, कापर, कोबाल्ट, जिन्क तथा विटामिन "बी" काम्पलेक्स है। इसलिए यह पेय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

पीलू का स्क्वेश एवं अन्य उत्पाद

सदैव हरा–भरा रहने वाला पीलू का वृक्ष 'जाल' मरुस्थलीय वनस्पति का एक मुख्य घटक है। यह पश्चिमी राजस्थान एवं गुजरात के अनेक क्षेत्रो मे बहुतायत मे पाया जाता है। गर्मियो मे जब तापमान अपनी चरम सीमा पर होता है तब जाल का हरा–भरा वृक्ष बहुत सुहावना लगता है एवं विशेष रुप से ऊँट के लिए चारा उपलब्ध कराता है। इसी गर्मी के समय इस पर छोटे छोटे हल्के लाल एव हल्के पीले रग के फल आते हैं जिन्हे स्थानीय निवासी बड़े चाव से खाते हैं। ऐसी मान्यता है कि इसे खाने से लू का असर कम होता है। इन्हीं पीलू के फलों से केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर मे नया उत्पाद 'पीलू का स्क्वेश' तैयार किया गया है जो न केवल भीषण गर्मी मे राहत देने वाला है बल्कि एक महत्वपूर्ण नये व्यवसायिक उत्पाद के रुप में भी स्वागत योग्य है।

पीलू के रसदार गूदे से 'पीलू जैम' भी बनाया गया है जो कि पीलू के फ्लेवर वाला एवं स्वादिष्ट होता है। बिना मौसम के पीलू का स्वाद लेने के लिए वैज्ञानिक विधि से सूखे पीलू भी तैयार किये गये हैं। व्यवसायिक दृष्टि से 'पीलू के स्कवाश' एव अन्य उत्पादो का महत्व बहुत अधिक है क्योकि बचे हुए पीलू के बीजो मे 40 से 50 प्रतिशत अखाद्य वसा पाया जाता है जिसे विभिन्न उपयोग में लिया जा सकता है। साबुन उद्योग इस वसा के उपयोग का सम्भावित क्षेत्र है। पीलू के वसा का उपयोग मोमबत्ती उद्योग मे भी किया जा सकता है। मल्हम के आधार (बेस) के रुप मे भी इस वसा का उपयोग हो सकता है। बीजों से वसा निकालने के पश्चात बची हुई खली मे 29 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा पाई गई है। अतः इस खली का उपयोग पशुआहार के रुप मे भी किया जा

सकता है। एक अनुमान के अनुसार, विभिन्न क्षेत्रो से पीलू के बीज की सम्भावित उपलब्धता 47,000 टन आंकी गई है।

फसलोपरांत तकनीकी

शुष्क क्षेत्र में जलवायु की विषमता के कारण फलो की आपूर्ति एक विशेष मौसम मे ही सम्भव हो पाती है। वर्ष पर्यन्त इनकी आपूर्ति रखने की दृष्टि से संस्थान में इनके परिरक्षण की दिशा मे प्रयत्न किये गये, जिनके द्वारा अन्य मौसम में भी फल की उपलब्धता तो होती ही है, साथ ही अधिक उत्पादित फलो का भी समुचित उपयोग हो जाता है।

बेरः बेर के फलो से स्क्वैश, जैम, मुरब्बा, बेर का अचार तथा सूखे बेर आदि परिरक्षित पदार्थ बनाने की विधियों का निर्धारण किया गया।

अनारः अनार के फलों में सबसे बडी समस्या फलो के फटने की है। इस तरह के छोटे तथा फटे हुये फलों का परिरक्षण करके अधिक आमदानी प्राप्त की जा सकती है। इसके फलो से स्क्वैश, जैली तथा अनार दाना आदि परिरक्षित पदार्थ बनाने की विधियॉ निर्धारित की गयी है।

खजूरः पश्चिमी राजस्थान की परिस्थितियो मे खजूर के फल प्राय: मानसून सीजन में (जुलाई–अगस्त) पककर तैयार होते है। फल पकने के समय यदि वर्षा हो जाती है, तो इसके सारे के सारे फल सड कर खराब हो जाते है। इस नुकसान से बचने के लिए खजूर के फलो को "डोका" अवस्था में तोडकर इनसे छुहारा तथा अन्य परिरक्षित पदार्थ बनाये जा सकते है। खजूर के फलों से छुहारा, पिंड खजूर, जैम तथा खजूर सान्द्रण आदि बडे ही आसान तरीको से बनाये जा सकते हैं।

आँवलाः इसके फलो में प्रचुर मात्रा (600–700 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम) मे विटामिन–सी पाया जाता है, जो इन फलो में ऐसे रूप में होता है कि फलो को गर्म करने या उबालने पर भी नष्ट नही होता है। अतः इस गुणकारी फल के अन्दर पाये जाने वाले औषधीय गुणो को सरक्षित करके बाद में उपयोग किया जा सकता है। इस संस्थान मे ऑवले के फलों से मुरब्बा, जैम, अचार तथा ऑवला चूर्ण आदि परिरक्षित पदार्थ बनाये गये हैं.

बेलः ऑवले की तरह बेल भी औषधीय फल के रूप में शुष्क क्षेत्र मे उगाया जाता है। इसके फल गर्मियों में पक कर तैयार होते हैं। इसके फलों से मुरब्बा, स्क्वैश, जैम तथा बेल पाउडर आदि बनाने की विधियों का निर्धारण किया गया है:

कैर व गूंदाः राजस्थान प्रदेश का मूल देशज माने जाने वाले ये फल यहॉ पर प्राकृतिक रूप से बहुतायत मे पाये जाते हैं। यहॉ के मूल निवासी इसके फलो को कई प्रकार से प्रयोग में लाते है। इसके फलों से इस संस्थान में अचार बनाने की विधि निर्धारित की गयी है।

ग्वारपाठा के प्रसंस्कृत उत्पाद

- ऐलो क्रेक क्रीम : यह क्रीम कटी–फटी और रूखी त्वचा के लिए बहुत उपयोगी है। यह त्वचा की छोटी–मोटी खरोचो और घावो को भरने मे भी सहायक है।
- ऐलो मॉईस्चराइजर : यह सामान्य/तैलीय त्वचा को मुलायम बनाकर उसमे निखार जगाता है। यह सर्दी के कारण त्वचा पर बनने वाले काले धब्बो को भी मिटाता है।
- ऐलो कोल्ड क्रीम : सामान्य एव हलका रूखे त्वचा के लिय उपयोगी है।
- ऐलो जैल : यह मुख्य रूप से एक मॉइस्चराईजर के रूप में कार्य करता है। यह गर्मियो मे बहुत ही उपयोगी है। इसके नियमित इस्तेमाल से बालों की बढोत्तरी के साथ–साथ नए बाल का उगना भी संभव होता है।
- ऐलो केन्डी : यह एक खाद्य–पदार्थ है। इसके सांद्रक रूप मे ए.वी.पी.एस. इसमें मौजूद रहते हैं।
- ऐलो वेरा का आचार : प्राकृतिक अव्यय तथा ए.वी.पी एस मौजूद है।

तकनीक हस्तांतरण

तकनीकी हस्तान्तरण

"काजरी" अपनी अनुसंधान गतिविधियो के साथ–साथ प्रसार और प्रशिक्षण गतिविधियो के द्वारा अपनी विकसित तकनीको को किसानो और कृषीय अधिकारियो तक पहुँची है। फसलों, टीबा स्थरीकरण, बूँद–बूँद एव फव्वारा सिंचाई पद्धतियो आदि को किसानो के खेतो एवं सरकारी फार्मों पर पश्चिमी राजस्थान में देखा जा सकता है। "काजरी" द्वारा विकसित तकनीको को राजस्थान सरकार के वित्तीय सहयोग से 6 जिलो के 12 गाँवों में प्रभावी तरीके से पहुँचाया गया है। सस्थान के कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किसानो को विभिन्न कृषीय पद्धतियों पर तकनीकी मार्ग दर्शन उपलब्ध करवाया गया है। समय–समय पर किसानों के प्रयोग हेतु प्रसार साहित्य भी प्रकाशित किया जाता है। मरू भूमि पारिस्थितिकी और पर्यावरण समस्याओं पर जागरूकता उत्पन्न करने हेतु "काजरी" द्वारा विभिन्न प्रदर्शनियों का समय–समय पर आयोजन किया जाता है। समय–समय पर सस्थान में तथा बाहर गॉवो मे किसान मेलो का आयोजन भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त "काजरी" के तीन कृषि विज्ञान केन्द्रों (जोधपुर, पाली एवं भुज) द्वारा किसानो को सस्थान में एवं गॉवों में विभिन्न प्रशिक्षण व सलाह दी जाती है। सस्थान मे स्थित "एटिक" मे किसानो को सलाह, बीज, पौधे, खाद आदि एक ही स्थान पर उपलब्ध कराये जाते है।

संस्थान द्वारा विकसित और प्रस्तावित की गई किस्मो के परिणामस्वरूप क्षेत्र के 64 प्रतिशत में बाजरी, करीब 75 प्रतिशत मे राया और 50 प्रतिशत में ग्वार की उन्नत किस्मे लगाई गई है। पिछले दशक में 54 टन बीज मारू ग्वार, 23 टन मारू मोंठ और 2 टन से अधिक अन्य शुष्क फसलो के वितरित किये गये।

उच्च लवणीयता सकेन्द्रित पानी से सिंचाई से उत्पन्न मृदा लवणीयता को दूर करने के लिए किसानो को राज्य सरकार द्वारा दी जा रही वित्तीय सहायता में "काजरी" द्वारा स्तरीकृत जिप्सम देय मानको को स्वीकार किया गया है।

"काजरी" का मरू उद्यानिकी मे बहुत बडा योगदान रहा है। जोधपुर के आस–पास 50 बेर की नर्सरियॉ है जो प्रतिवर्ष 57 लाख पोधे बेच रहे है। इससे ग्रामिणो को रोजगार उपलब्ध हुए है। 1979 से 5 मिलियन पौधों से ज्यादा (25 मिलियन रू की प्राप्ति) पौधे इन नर्सरियो द्वारा बेचे गये। गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में "काजरी" द्वारा विकसित अनार की किस्में लोकप्रिय हो रही हैं।

150 से अधिक गॉवों में "काजरी" सीधे अपनी तकनीक का प्रदर्शन किया है। "काजरी" क्षेत्र के किसानों व पशुपालको को प्रशिक्षण भी देती है।

पशुमेला एव विभिन्न ग्रामीण आयोजनो मे कृषि प्रदर्शनी का आयोजन भी किया जाता है, ताकि ज्यादा से ज्यादा ग्रामीण लाभ उठा सके। समाचार के जरिये भी कृषि सम्बधी सलाहें लोगो को दी जाती है। इस तरह यह विभाग अपने वैज्ञानिको के जीवन्त सहयोग से किसानों की भरपूर सेवा का कार्य निष्पादन करता आ रहा है। आज शोधकार्य मे लगे वैज्ञानिको की रूचि भी किसानो की सेवा में ज्यादा दिखाई दे रही है। यह परिवर्तन प्रसार कार्य की सफलता का द्योतक है।

कृषि प्रसार एवं प्रशिक्षण

"काजरी" की उन्नत तकनीकियों के प्रसार हेतु वर्तमान मे गॉव दातीवाडा को गोद लिया गया है जिसमें "काजरी" द्वारा विकसित बाजरी की किस्म सी जेड पी. 9802, एव उसमे एकीकृत पौषक प्रबन्धन, खरीफ फसलो मे चूहा नियंत्रण, मरू सेना द्वारा मोठ एवं ग्वार को उपचारित करके बोना, पशु पौष्टिक द्वारा पशुओं मे दुग्ध उत्पाद बढाना एवं कम्पोस्ट बनाना आदि को प्रदर्शित किया गया है एवं इन पर प्रशिक्षण भी आयोजित किये। बाजरा की उन्नत किस्म सी जेड.पी 9802 के प्रयोग से 631 कि ग्रा. उपज प्राप्त हुई जबकि स्थानीय किस्म से केवल 460 कि.ग्रा उपज प्राप्त हुई।

बाजरा एवं ग्वार की फसल में चूहा नाशी विष चूगे के प्रयोग किये गये। बाजरा की फसल मे 4 चूहा नाशी जिक फॉस्फाइड, ब्रोमेडाइओलोन, जिंक फॉस्फाइड + ब्रोमेडायोलोन एव अनुपचारित के 4 उपचार लिये गये। चूहा नाशी के प्रयोग से बाजरा की उपज मे 36 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि ग्वार की फसल मे एक चूहा नाशी जिक फॉस्फाइड के प्रयोग से उपज में 14 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

मरू सेना से ग्वार की उन्नत किस्मो को बीज उपचारित करके बोने से ग्वार मे फाल अधिक आया, बीमारी कम लगी एवं 12 से 18 प्रतिशत की उपज में बढोत्तरी हुई अपेक्षाकृत बिना उपचारित करके बीज बोने के। स्थानीय किस्म मे लगभग 32 प्रतिशत की उपज बढी।

पशुओ में दुग्ध उत्पादन बढाने हेतु "काजरी" पौष्टिक दाना पर गॉव दातीवाडा मे प्रशिक्षण आयोजित किये गये। प्रशिक्षण के द्वारा जो पौष्टिक दाना तैयार हुआ वह बकरी, गाय एव भैंस को खिलाया गया। बकरी को 100 ग्राम दाना प्रति दिन एवं गाय एवं भैस को 300 ग्राम प्रति दिन (150 ग्राम सुबह, 150 ग्राम शाम) खिलाया गया, जिससे बकरी मे 2 महीने बाद 460 मि. लीटर, गाय मे 860 मिलीटर एवं भैंस मे 950 मिली. प्रति दिन दुग्ध उत्पादन में बढोत्तरी हुई। पशुओं को पौष्टिक दाना खिलाने से पाण मे बढोत्तरी हुई, स्वास्थ्य ठीक रहा एव जो पशु हड्डी, प्लास्टिक खाते थे वो भी नियन्त्रित हो गये।

कृषि महिला कार्यक्रम के अन्तर्गत महिला स्वंय सहायता को पशु पालन एवं उद्यमिता विकास हेतु प्रशिक्षण दिया गया यह प्रशिक्षण 7 गावो भैसेर कोतवाली,

बीजवाडिया, डोली, दातीवाडा, बोरावास एव खोरवरिया मे आयोजित किये गये जिससे उनके ज्ञान एवं दक्षता मे वृद्धि हुई।

कृषक महिलाओं में उद्यमिता विकास

स्वयंसहायता समूह छोटे उद्यमियो की ऐसी सस्था है, जिनके सदस्य सामूहिक जिम्मेवारी तथा परस्पर सहमति से लधु उद्योग स्थापित कर आय अर्जन करते हैं। राष्ट्रीयकृत बैंक कम ब्याज ऋण उपलब्ध करवाकर तथा राज्य सरकार विभिन्न संसाधन उपलब्ध करवाकर सहयोग प्रदान करती है। महिलाएँ, पुरूषो की तुलना मे, कर्ज वापसी मे अधिक अनुशासित एवं प्रतिबद्ध होने से आज कुल कार्यशील स्वयसहायता में से 90 प्रतिशत से अधिक महिला स्वय सहायता समूह कार्य कर रहे है। महिलाएँ अपनी प्राकृतिक योग्यता से गॉव में उपलब्ध ससाधनो एव उत्पाद से निम्नलिखित क्रिया–कलापो से अच्छी आय अर्जन कर सकती है।

किचन गार्ड़न

किचन गार्ड़न ग्रामीण महिलाओ के आय का सरल तरीका है। मरुस्थल मे जहॉ, पानी की उपलब्धता की कमी है, वही घर के बेकार पानी का उपयोग किचन गार्ड़न मे कर सकती हैं। घर के पिछवांडे मे मौसमी फल एवं सब्जियॉ लगाकर घर की पूर्ति के पश्चात् शेष बचे उत्पाद को बेच कर अच्छी कमाई कर सकती है।

नर्सरी

ग्रामीण महिलाएँ अपने परम्परागत ज्ञान को तकनिकी प्रशिक्षण से प्रवीणता लाकर घर के पास या अन्य खुल्ली जगह पर नर्सरी स्थापित कर सकती है। बाजार की माग को ध्यान मे रखकर वनोत्पादन, फल एव फूल वाले पौधो की पौध प्लास्टिक थैलियो मे तैयार करके निकटस्थ पंचायत, विद्यालय तथा अन्य गैर सरकारी/सरकारी सस्थाओ को बेच कर अच्छा धन कमाया जा सकता है। नर्सरी स्थापना हेतु राज्य सरकार कई अनुदान योजनाएँ है, जिनका फायदा भी लिया जा सकता है।

खाद्य परिरक्षण

खाद्य परिरक्षण, महिलाओं के आय–अर्जन का परम्परागत तरीका है। मौसमी फल एवं सब्जी वाली फसलों के उत्पाद के अचार, जैम और जैली बनाकर। फल और सब्जियो को सुखाकर, बे मौसम में बेचकर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। अधिशेष दूध से पनीर एव उत्पाद बनाकर। शादी–विवाह एव सामाजिक मौके पर ग्रामीण महिलाएँ केटरिंग जैसा व्यवसाय अपना कर अपने परिवार को आर्थिक सम्बल तो प्रदान करती है, साथ जीवन स्तर मे आमूल परिवर्तन ला सकती है।

सामाजिक आर्थिक अध्ययन

राजस्थान की घुम्मकड़ जातियों गाडोलिया लौहार, राइका का पूर्ण अध्ययन किया गया।

इसके अतिरिक्त, प्रदर्शन, प्रशिक्षण, कृषि तकनीक सूचना केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र, पत्रिकाओ, पेम्पलेट्स आदि के माध्यम से "काजरी" अपनी तकनीक लेकर गाँव–गॉव पहुँची है। "काजरी" की विभिन्न तकनीक एव उनके लाभ लागत अनुपात से स्पष्ट है कि काजरी की तकनीक कम लागत एव अधक मुनाफा देने वाली है।

1961 और 2001 के मध्य पश्चिमी राजस्थान मे मानव संख्या 194 प्रतिशत बढ तथा पशु सख्या 72 प्रतिशत बढी। 1961 मे मानव धनत्व 37 प्रति कि मी. तथा पशुसख्या घनत्व 66 प्रति वर्ग कि मी थी जो 2001 मे क्रमश 108 प्रति वर्ग कि.मी. और 113 प्रति कि.मी. हो गई। परन्तु प्राकृतिक ससाधन वही है और वही रहेंगे। यह मुख्यतः अनुसधात्मक तकनीक का परिणाम ही रहा कि इस बढ़ती मानव व पशु सख्या का उचित प्रबन्धन हुआ।

"काजरी" की कम लागत वाली व अच्छा मुनाफा देने वाली ये तकनीकें आज स्पष्ट राजस्थान के गॉवो मे दृष्टिगोचर होती है। "काजरी" न केवल राज्य स्तरीय कृषि, जल, वानिकी, अकला से निपटने सम्बंधी, परियोजनाओं मे महत्वपूर्ण सरंक्षण मे भी एक नोडल एंजेसी बनाया गया है। "काजरी" के रेगिस्तानीकरण नियंत्रण प्रबोधन एवं मूल्याकन सम्बधी योगदान को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर माना गया है। कम लागत एवं अधिक उत्पादन द्वारा लाभ देने वाली "काजरी" की विभिन्न तकनीको को शुष्क क्षेत्र के किसानों द्वारा विस्तृत स्तर पर अपनाया गया है।

सहयोग

संस्थान वर्षो से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अन्य संस्थानो, कृषीय विश्वविद्यालयो और अन्य राष्ट्रीय एवं अतर्राष्ट्रीय एजेंसियों से सहयोग बनाए हुए है। फेरा, भारत–आस्ट्रेलिया, भारत–अमेरिकी, भारत–जापान, नाबार्ड, बंजर भूमि विकास बोर्ड, अतरिक्ष विभाग, कपडा मत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, राज्य सरकार आदि के वित्तीय सहयोग से विभिन्न अनुसंधान परियोजनाएँ सस्थान में चलाई जा रही है।

पुरस्कार एवं सम्मान

"काजरी" के विभिन्न वैज्ञानिकों को उनकी अपूर्व सेवाओ हेतु कई राष्ट्रीय एवं अतर्राष्ट्रीय पुरस्कार एव सम्मान दिए गए। उनमे से कुछ अति विशिष्ट पुरस्कारो को यहॉ बताना आवश्यक है।

(1) काजरी को राजभाषा प्रयोग हेतु राजश्री टडन प्रथम पुरस्कर
(2) अखिल भारतीय दलहन परियोजना (काजरी) चौधरी देवी लाल आउटस्टेडिग एवार्ड

(3)	श्री सी पी भिम्मया	ईरान राज्य द्वारा गोल्डन शील्ड
(4)	श्री आर बी. दास	अतर्राष्ट्रीय कृषि एवं खाद्य सगठन द्वारा मेडल
(5)	डॉ. आई प्रकाश	रफी अहमद किदवई मेमोरियल और इन्सा एवार्ड
(6)	डॉ. रामनिवास	जवाहर लाल नेहरू एवार्ड
(7)	डॉ. ए कृष्णन	राष्ट्रीय फेलोशिप
(8)	डॉ. के.ए. शकर नारायण और टीम	भ.कृ.अ.प टीम एवार्ड
(9)	डॉ. आई सी गुप्ता	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवार्ड (सबसे अच्छे हिन्दी प्रकाशन हेतू)
(10)	डॉ पी बी एल चौरसिया	एन आर डी सी एवार्ड
(11)	डॉ आर.के कौल	इन्सा मेडल
(12)	डॉ जे वेकटेश्वर्लु	रफी अहमद किदवई मेमोरियल एवार्ड
(13)	डॉ सुरेश कुमार	डॉ के ए शकर नारायण मेमोरियल एवार्ड
(14)	डॉ. के आर सोलकी	भा कृ अ.प टीम एवार्ड
(15)	डॉ जे सी तरफदार	सुकुमार बसु मेमोरियल एवार्ड
(16)	डॉ डी कुमार डॉ आर एस मेडतिया डॉ प्रतिभा तिवारी	आइसीर एवार्ड
(17)	डॉ एस के कौशिक	इदिरा गॉधी राजभाषा पुस्तक लेखन पुरस्कार
(18)	डॉ हरपाल सिह डॉ. ए के सिह डॉ एच एल कुशवाहा	आई एस ए ई टीम एवार्ड
(19)	डॉ ए वी राव	डॉ के ए शकरनारायण मेमोरियल एवार्ड
(20)	डॉ जे सी तरफदार	इम्फोस–फई (IMPHOS-FAI) एवार्ड
(21)	डॉ एच एल कुशवाहा डॉ ए के सिह डॉ हरपाल सिह डॉ एच सी बोहरा	आर्यभट्ट एवार्ड (स्वदेशी साईस मूवमेन्ट, इण्डिया)
(22)	डॉ के सी सिह डॉ ए एस राव	डॉ के ए. शकरनारायण मेमोरियल एवार्ड
(23)	डॉ पी सी पाडे	डॉ. एस एस भटनागर एवार्ड (हरिओम आश्रम प्रेरित)

काजरी की उपलब्ध तकनीकों का औसत लाभ लागत अनुपात और प्राप्ति

तकनीक का नाम	लागत	फसल/कृषि पद्धति जिसके लिए उपयुक्त	पानी प्रयोग प्रभावकारिता / जल सरक्षण	कृषि उपज और अन्य लाभो पशु पालन आदि मे वृद्धि	लाभ लाग त अनुपात	पुर्न प्राप्ति समय
उन्नत जल सरक्षण ढॉचा	अलग–अलग करीब 40000 –50000/ फार्म पोड	पीने/उद्यानिकी आधारित कृषि पद्धति	वर्षा जल सरक्षण और प्रयोग	80–120 प्रतिशत	175–250	द्वितीय वर्ष से
क्षारीय पानी से सिचित भूमि का प्रबध	विभिन्न करीब 4000–10000/ है	क्षारीय मृदा और लवणीय पानी से सिचित कृषि पद्धति	उच्च जल प्रयोग क्षमता	200–500 प्रतिशत	25–45	प्रथम वर्ष
बेर और अन्य उद्यानिकी फसलो का उन्नत रोपण	करीब 10000–15000/ है तीन वर्ष हेतु स्थापन लागत	शुष्क भूमि/सिचित कृषि पद्धति	जल प्रयोग प्रभावकारिता 40–50 प्रतिशत	200–350 प्रतिशत	25–35	चतुर्थ वर्ष
कुमट (*अकेसिया सेनेगल*) से अधिक गोद उत्पादन	रू 40/पेड	कुमट आधारित फसल पद्धति	हॉ	400 से 750 ग्राम गोद/पेड	30–30	प्रथम वर्ष
खेती पद्धति और वैविध्य पूर्ण कृषि	विभिन्न	शुष्क/सिचित कृषि पद्धति	हॉ	100 से 400 प्रतिशत	विभिन्न	प्रथम से चौथे वर्ष
शुष्क जल ग्रहण क्षेत्र प्रबधन	जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम पर निर्भर करीब 4000–6000 रू /है	विविध जल–प्रयो ग शुष्क और सिचित फसल पद्धति, एकीकृति भू–प्रबधन	हॉ	250–500 प्रतिशत	10–40 विभिन्न	द्वितीय वर्ष
सिचाई पद्धति	रू 30000 फव्वारा एव रू 65000 बूँद–बूँद पद्धति हेतु	सभी फसलो हेतु टमाटर, मिर्ची, कपास, सब्जी, तरबूज और उद्यानिकी फसल हेतु	30–55 प्रतिशत पानी की बचत	35–50 प्रतिशत उपज वृद्धि नियत्रण और कुल सिचाई पद्धति मे	–	2–4 वर्ष फसल और सिचाई पद्धति पर निर्भर
शुष्क और सिचित खेती हेतु कृषि पद्धति	विभिन्न रू 3000–5000/है शुष्क क्षेत्र हेतु, रू 7000–10000 सिचित क्षेत्र हेतु	कृषीय फसल पद्धति	150–200 प्रतिशत	200 से 400 प्रतिशत	14–25	प्रथम वर्ष

तकनीक का नाम	लागत	फसल/कृषि पद्धति जिसके लिए उपयुक्त	पानी प्रयोग प्रभावकारिता / जल सरक्षण	कृषि उपज और अन्य लाभो पशु पालन आदि मे वृद्धि	लाभःलागत अनुपात	पुर्न प्राप्ति समय
फसल की किस्मो का विकास बाजरा सी जेड सी –923 (निस्तारित और नोटीफाइड)	रू 150/है (बीज कीमत)	फसल आधारित कृषि पद्धति	शुष्क एव सिचित दोनो क्षेत्रो हेतु उपयुक्त	7–20 प्रतिशत अधिक उपज	–	उसी वर्ष
बाजरा किस्म सी जेड पी –9802 (निस्तारित एव नोटीफाइड 2002)	रू 150/है (बीज कीमत)	वही	400 मि मी से कम वर्षा वाले सर्वाधिक शुष्क क्षेत्रो हेतु उपयुक्त	14 प्रशित अधिक अन्न उपज	–	उसी वर्ष
काजरी मोठ–1	रू 5000–6000/है,	एकल फसल, बाजरा के साथ अर्न्तफसल	–	10–15 प्रतिशत उच्च यलोपीतवायरस प्रतिरोधी उच्च चारा 2500–300 कि ग्रा धान प्रोटीन 25 प्रतिशत	21	उसी वर्ष
काजरी मोठ–2	रू. 5000–6000/है	एकल फसल बाजरा के साथ अर्न्त फसल मे, देरी से बुवाई जुलाई अत तक	–	काजरी मोठ–1 से 15–20 प्रतिशत धान प्रोटीन 25 प्रतिशत	21	उसी वर्ष
काजरी मोठ–3	रू 5000–6000/है	शुष्क क्षेत्र, खराब मृदा, एकल फसल अर्न्तफसल बाजरा के साथ	–	10–12 प्रतिशत उच्च, सूखारोधी पीतवायरस से बचाव	351	उसी वर्ष
घास काजरी–75 (मारवाड अजन)	बीज कीमत रू. 1000 कुल कीमत करीब 4000/है	*सेचरस सिलियरिस* चारागाह स्थापन खरीफ हेतु उपयुक्त	सूखारोधी	वर्षा पर निर्भर 50 प्रतिशत अधिक हरा चारा 30% अधिक सूखा चारा	–	दूसरे वर्ष
काजरी–76 मारवाड घामण	बीज कीमत रू 1000 कुल लागत करीब रू 4000/है	*सेचरस सेटीजरेस*	सूखारोधी	10–12 प्रतिशत उच्च हरा चारा	–	दूसरे वर्ष से

तकनीक का नाम	लागत	फसल/कृषि पद्धति जिसके लिए उपयुक्त	पानी प्रयोग प्रभावकारिता / जल सरक्षण	कृषि उपज और अन्य लाभो पशु पालन आदि मे वृद्धि	लाभ लागत अनुपात	पुर्न प्राप्ति समय
घास काजरी–2221 (जेनेटिक स्टोक–2003)	बीज कीमत रू. 1000/है	*सेचरस सिलियरिस* चारागाह स्थापन्न	सूखारोधी	करीब 20 प्रतिशत अधिक हरा चारा	–	दूसरे वर्ष से
बहु–पौषक खाद्य बट्टिका	रू 10–12/कि ग्रा	बडे और छोटे जानवर शुष्क कृषि पद्धति अन्तर्गत	–	18–40 प्रतिशत वृद्धि दूध उत्पादन मे	3 0	1.5 महीने
पूर्ण पशु खाद्य बट्टिका	रू 5–6/कि ग्रा	बडे व छोटे पशु शुष्क कृषि पद्धति अन्तर्गत	–	15 प्रतिशत दूध उत्पादन मे वृद्धि (बडे पशु)	2 1	1 5 महीने
बहु–पौषक खाद्य मिश्रण	रू 8–10/कि ग्रा	वही	–	40 प्रतिशत दूध वृद्धि छोटे पशु	3 4	1 5 महीने
भूसे का यूरिया उपचार	रू 0 40–0.45/कि ग्रा	शुष्क कृषि मे बडे व छोटे पशु	–	20 प्रतिशत वृद्धि उपज मे	4.02	2 महीने
बकरी के दूध से कुल्फी बनाना	रू 15/कि ग्रा	कृषि पद्धति में छोटे पशु	–	100 प्रतिशत वृद्धि आय मे	2 0	10 दिन
बकरी दूध से पनीर व वे बनाना	रू 10/कि ग्रा	शुष्क कृषि मे बडे व छोटे पशु	–	60 प्रतिशत वृद्धि आय मे	2 0	15 दिन
कृन्तक प्रबधन हेतु विष चुग्गा	रू 15–30/कि ग्रा विष चुग्गा (50–70 चूहा बिलो हेतु पर्याप्त)	शुष्क क्षेत्रो के शुष्क एव रिचित क्षेत्रो हेतु	लागू नहीं	चूहा नियत्रण मे 80 प्रतिशत सफलता	10 1	5–10 दिन
आई पी एम मरू सेना–2	बीज उपचार रू 25 मृदा मे डालना रू 100	जीरा	लागू नही	0 5 क्वि/है	1 70	4 महीने
आई पी एम मरू सेना–1	बीज उपचार रू 25 मृदा मे डालना रू 100	सभी फसल	–	0 5 क्वि/है बीमारी पर निर्भर	1 70	4 महीने
आई पी एम मरू सेना–3	बीज उपचार रू 25	फली धान्य	लागू नही	0 35 क्वि/है	1 25	4 महीने
सौर मोमबत्तीय सयत्र	रू 12000 साँचे, मोम पिघलाने सहित	भारत मे कही भी विशेषतत शुष्क क्षेत्र	पारम्परिक पद्धति से होने वाली मोम के वाष्पीकरण मे 5 प्रतिशत बचत	गर्मी मे 10–16 कि ग्रा/दिन, सर्दी मे 6–9 कि ग्रा/दिन	प्रति एकक से अतिरिक्त मासिक आय–रू 2000	1 वर्ष

तकनीक का नाम	लागत	फसल/कृषि पद्धति जिसके लिए उपयुक्त	पानी प्रयोग प्रभावकारिता / जल सरक्षण	कृषि उपज और अन्य लाभों पशु पालन आदि मे वृद्धि	लाभ लागत अनुपात	पुर्न प्राप्ति समय
सौर शुष्कक	रू 3500 (10 कि ग्रा क्षमता) रू 35000 (100 कि ग्रा /सयत्र) क्षमता	फल एव सब्जियॉ	10–15 प्रतिशत सूर्य मे सुखाने पर हुए नुकसान मे बचत	सूखने का समय 50 प्रतिशत कम	रू.55 (200 कि ग्रा प्रतिदिन प्रति यूनिट)	2 वर्ष
कूल चेम्बर	रू 3500 (170ग170 ग90 से मी आकार के अन्तर्गत 60 कि ग्रा क्षमता हेतु)	शुष्क क्षेत्र	फल और सब्जियो को 3–7 दिन ताजा रखा, गर्मी 3–5 दिन (जबकि सामान्य कक्ष मे 1–2 दिन), सर्दी 3–7 दिन (सामान्य कक्ष मे 2–3 दिन)	20–60 कि ग्रा. /प्रति यूनिट	टमाटर हेतु रू.3500 प्रति वर्ष/यूनिट (बैंगन हेतु 1500 रू प्रति वर्ष/यूनिट)	–
पशु खाद्य सौर कुकर	रू 2500/यूनिट	पशु खाद्य उबालना	6750 एम जे ईंधन तक की बचत/वर्ष	पारम्परिक ईंधन की बचत, पर्यावरण सुरक्षा, समय बचत, महिलाओ मे श्वास सम्बधी बीमारी की कमी	डेयरी कृषक हेतु	–
नॉन ट्रेकिग सौर कुकर	रू 2000/यूनिट	घरेलू कुकिग	129375 एनजे ईंधन की प्रति वर्ष बचत	वही	चावल खाने वालों हेतु	–

(स्रोत काजरी प्रोस्पेक्टिव प्लान)

★★★